अष्टम कुसुमम्

स्मार्तविवेकमार्तण्डः

लेखक

वामी श्री विवेकनाथ योगेश्वर

प्रकाशक

श्री जनहितकारिणी विवेक ग्रन्थमाला
नवलनाथ जी महाराज का मठ– बीकानेर

सम्पादक—

पण्डित चण्डीप्रसाद शर्मा दाधीच
व्याकरण साहित्य दर्शनाचार्य
जकीय श्री गंगा संस्कृत महाविद्यालय
मन्त्री, विवेक ग्रन्थमाला, बीकानेर

प्रथम बार

पुस्तक मिलने का पता

१. विवेक ग्रन्थ माला
श्रीनवलनाथजी का मठ
ईदगाहबारी, बीकानेर।

२. पं चण्डीप्रसाद आचार्य
राजकीय श्रीगंगासंस्कृत महाविद्यालय
बीकानेर।

व्ययमात्र मूल्य दो रुपये

मुद्रक
लक्ष्मी प्रिन्टिंग प्रेस
बीकानेर

※ जगद्गुरु योगेश्वर श्री गोरखनाथ जी ※

सूचीपत्र

प्रातःस्मरणीय श्री १००८
स्वामी उत्तमनाथ जी महाराज

श्री गोरक्षनाथो विजयते

समर्पण

जिनकी स्नेहपूर्ण अनुकम्पा से यह
श्रतौस्मार्तविवेक स्फुरित हुआ है
उन प्रातःस्मरणीय पूज्य
गुरुदेव जी
श्री १००८ उत्तमनाथ जी महाराज
के श्री चरणों में सादर
समर्पित ।

भूमिका

पूर्वनिवेदनम्

श्री गोरक्ष योगेश्वरो विजयते

परब्रह्म परमात्मा की एकरस स्थिर सत्ता में प्रतिभासित चतुर्द
भुवन एवं विश्व के नाना दृश्य असत् एवं अस्थिर मिथ्या होते हुए भ
स्थिर एवं सत्य भान हो रहे हैं। जब तक विवेक रूपी सूर्य का उद
नहीं होता है तब तक इनके मिथ्यात्व का भान नहीं होता। अस
को सत् देखने वाला अज्ञान विवेक सूर्य के प्रकाश से ही मिटता है
विवेक सूर्य सत् और असत् को विविक्त करके जन्म जन्म से भटक
वाले प्राणियों को सत्पथ सत्य मार्ग दिखा देता है। जिसके हृदय
विवेकरूपी भानु का उदय होता है वही विद्वान् और पण्डित कहा जा
है। ऐसे विद्वानों के ही उपदेश से मन का भीतरी अन्धकार दूर
सकता है। इस अन्धकार को बाहरी सूर्य तथा चन्द्रमा नहीं दूर
सकते।

उदयन्तु शतमादित्या उदयन्तु शतमिन्दवः।
न विना विदुषां वाक्यैर्नश्यत्याभ्यन्तरं तमः ॥१॥

सूर्य के अभाव में जुगनू भी अपने को सूर्य मान लेता है कि ज्यों ही सूर्य निकला उसका कहीं पता भी नहीं रहता। विद्वानों के अभाव में यही दशा अपूर्ण विद्वानों की भी होती है।

खद्योतो द्योतते तावत् यावन्नोदयते शशी।
उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः ॥२॥

श्रुतियों एवं स्मृतियों के गूढ तत्व को जानने वाले विद्वान ही संसार में धर्माधर्म सत्यासत्य कर्तव्याकर्तव्य का विवेक कर सकते हैं। अपरिपक्वमति विद्वानों के द्वारा किया हुआ शास्त्रीय विचार भ्रान्त होने के कारण अर्थ का अनर्थ कर बैठता है। वह स्वयं तो गर्त में गिरता ही है अपने पीछे दूसरों को भी गिराने का कारण बनता है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम खूब परीक्षा करके दूसरे का उपदेश सुनें। इस विषय में निम्न कहावतें सदा से मनुष्य को सावधान करती आ रही हैं।

धर्महीनस्सदा त्याज्यः शास्त्रद्वेष्टा विडम्बकः।
गुरु कीजे जानकर पानी पीजे छानकर॥

भारतवर्ष पर सदा से ही परमेश्वर की असीम करुणा रही है। श्रुति एवं स्मृति के श्रवण स्मरण से इसी देश में सर्वप्रथम ज्ञान विवेक-रूपी मार्तण्ड का उदय हुआ है। यहीं से उसकी किरणों ने दिग्-दिगन्त में आलोक फैलाया है। वेद शास्त्रों के पढ़ने के कारण सदा-

वारी सत्कर्मनिष्ठ विद्वान् भारत में ही उत्पन्न हुए हैं। अपनी दिव्य दृष्टि से अतीन्द्रिय तत्वों को भी साक्षात् करने वाले विवेकशील ब्रह्मर्षि राजर्षि योगेश्वर सन्त महात्मा सदा से ही यहां जन्म लेते रहे हैं। जब जब इस देश में असुर अंधकार फैलने लगा तब तब यहां ईश्वरीय अंश उतर आया है और श्रुति स्मृति के गगन में शाश्वत भासित विज्ञान सूर्य को अवरुद्ध करने वाले आसुरी कुहरे को चीर दिया है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ गीता ॥३॥

यह तो संसार का स्वभाव ही है कि दिन के बाद रात भी आया करती है। उस समय मानवदृष्टि मन्द पड़ जाती है और निद्रा में सब लोग मग्न हो जाते हैं। छोटे छोटे तारे अपना प्रकाश फैलाने की कोशिश करते हैं पर अनेक भेद होने से उनके प्रकाशों से कोई लाभ नहीं पहुँचता। सूर्य और पृथ्वी में व्यवधान भी कुछ काल ही रहता है किन्तु सूर्य पुनः आकर अपनी स्थायी प्रकाशवत्ता से जब देदीप्यमान होने लगता है तब उनके भेद न जाने कहां लीन हो जाते हैं।

आजकल भारत में भी रात सी छा गई है। जो सदा अंधकार में रहे वे न जाने कैसे रात में देखने लगे हैं। उनकी भौतिक मिथ्या दृष्टि आध्यत्मिक सत्य तत्व को भी मिथ्या तथा भौतिक मिथ्या तत्व को ही सत्य देख रही है। उनके पद चिह्नों पर चलने वाले

वर्तमान भारतीय राज मनोवृत्ति के कारण भी अन्धकार को प्र मानने लगे हैं। वे इस प्रयास में लगे हैं कि भारतीय सना धीमानार्य आर्य जीवन मार्ग पथ से भ्रष्ट हो जाय। इस प्रकार अन्धकार को दूर करने के लिये इस समय पुनः "श्रीस्मार्त सि मार्तण्ड" के उदय होने की नितान्त आवश्यकता है। इसी उद्दे से यह प्रस्तुत ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया गया है। भारत भूमि से अविवेक तिमिर दूर कर देना ही एकमात्र इसका लक्ष्य है। आर्य जीवन और उसके सनातन मार्ग के बीच में पड़ने वाले नैराश्य-अन्ध-कार अविवेक को दूर करना ही इसका ध्येय है।

संसार के सब वादों से दूर रहकर हर एक प्राणी के प्रति मेरे हृदय में मैत्री भावना है। मेरे गुरुओं ने इस सिद्धपीठ में जो वेद, दर्शन, उपनिषद्, धर्मशास्त्र तथा पुराण संगृहीत किये हैं उनको मनन अवलोकन करना मात्र ही मेरी दैनिक चर्य्या है। इसीसे मुझे शांति का अनुभव होता है। किसी के प्रति मेरे मन में रागद्वेष की भावना नहीं है चाहे वह किसी भी जाति या धर्म से सम्बन्ध रखता हो। मुझे तो प्रत्येक मानव में केवल अच्छाई ही नजर आती है किन्तु जब किसी के द्वारा वेदों के एवं शास्त्र पुराणों के विषय में अथवा आर्यों की सनातन मान्यताओं के प्रति श्रुतिस्मृति सदाचारविरुद्ध कुछ का कुछ कहते सुनता हूँ तो न जाने क्यों हृदय में खेद उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

संप्रति बहुत से नवीन रोशनी के विद्वान् कहलाने वाले व्यक्ति वेद शास्त्र पुराणों को बिना पढ़े ही उसका तात्पर्य न समझ करके भी गला फाड़ फाड़कर उसकी समालोचना करते हुए देखे जाते हैं। उन भ्रान्त जीवों को कुछ कहना व्यर्थ है क्योंकि वे अज्ञानवश ऐसा करते हैं किन्तु हमारे कतिपय भारतीय आर्य उनको पढ़कर भी किसी कारण से प्रेरित होकर जब उसके असली तात्पर्य से आंखें मूंदकर जो चाहते हैं लिख मारते हैं, तब कोई भी स्वदेशाभिमानी भारतीय व्यग्र एवं चकित हो जाता है। वह सोचने लगता है कि आर्यों में अनार्य-भावना प्रचार का उद्देश्य क्या है ? यद्यपि शास्त्रों के मर्म जानने वाले आर्य इतने पागल नहीं हैं कि किसी के कहने से वे अपने गोरक्षाप्रती पूर्वजों को गोभक्षक मान लेंगे किन्तु श्रौतस्मार्त धर्म पर विश्वास रखने वाले किसी आर्य के मन में इस प्रकार के प्रचारों से सन्देह तो उत्पन्न हो ही सकता है। सम्भावित इस निर्मूल सन्देह को दूर करने के लिये भारतीय श्रौतस्मार्त प्राचीन विचारों के विषय में यहां कुछ कहने के लिये मुझे बाध्य होना पड़ा है।

इस ग्रन्थ में कोई नई बात नहीं कही गई है। वेदशास्त्रानुकूल हमारे आर्य पूर्वजों का जो सदाचार विचार मान्य रहा है और है उसीका केवल यहां स्मरण कराया गया है। इस छोटे से संग्रह में वेद शास्त्रों के आधार पर सृष्टिक्रम और युग प्रमाण तथा ब्रह्मा की आयु कल्प एवं मन्वन्तर के विषय में विचार किया गया है। भारतीय सनातन संस्कृति, गायों का महत्व, देववाणी संस्कृत के १८

प्रस्थान आदि कई सम्बद्ध विषयों पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है इन सब विषयों पर इस ग्रन्थ में विचार करने का उद्देश्य आर्य जनता को अपने देश के प्राचीन स्वरूप का दर्शन कराना मात्र है न कि किसी के प्रति द्वेष भावना। इस पुस्तक के लिखने की हृदय में प्रेरणा एक पुस्तक पढ़ने के कारण हुई।

यह तो सब जानते हैं कि राहुल सांकृत्यायन महा पण्डित हैं। उनके द्वारा अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं जिनमें आर्यों की मान्यताओं पर चोट की गयी है। संयोगवश मुझको भी एक दिन किसी ने लाकर उनके द्वारा लिखित " दर्शन दिग्दर्शन " नामक पुस्तक दी। उस पुस्तक को मैंने पढ़ी तो ऐसा प्रतीत हुआ मानों किसी अभारतीय के द्वारा यह लिखी गयी हो। सहसा यह विश्वास भी नहीं आया कि एक आर्य ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न विद्वान् के द्वारा ऐसी भावना व्यक्त भी की जा सकती है। फिर मन में आया कि "अति सर्वत्र वर्जयेत् इस उक्ति के अनुसार शायद यह महा पण्डितता का ही तीव्र चमत्कार हो क्योंकि बहुत पढ़ लेने पर कहते हैं कि मनुष्य लौकिक सीमा से परे हो जाता है।

उनके मत में आर्य भारत में बाहर से आये थे। आर्यों का खाद्य मक्खन रोटी गोमांस तो था ही बछड़े का मांस प्रियतम खाद्य था। बुद्ध एवं नागार्जुन के बाद कपिल और व्यास वसिष्ठ उत्पन्न हुए। इत्यादि इस प्रकार की बातें दर्शन दिग्दर्शन में पढ़कर मैंने सोचा कि यह दिग्दर्शन तो नहीं यदि शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया

जाय तो इसे दिग्भ्रम फैलाने का प्रयास ही कहा जा सकता है। विशेष करके दर्शन दिग्दर्शन के पृष्ठ ३८०, ३८१ ३८२, ३८३, ३८४ में इस प्रकार की बातें लिखी गई हैं। इनके मतमें सबसे प्राचीन ऋग्वेद की रचना ई० पू० १५०० वर्ष के लगभग हुई। आर्य गोभक्षक थे और बाहर से भारत में आये। सिंधु की उपत्य का में एक सभ्य जाति को मारकर वहां आर्यों ने अपना साम्राज्य जमाया। भाँग पीकर नाचना उनका मनोरंजन था। इस प्रकार की केवल कोरी विद्वत्ता के बल पर लिखित अविश्वसनीय बातों को पढ़कर सोचा कि इस प्रकार के पण्डितों से तो अपण्डित भी भारतीय अच्छे जिनको अपने देश एवं संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा है। फिर मनमें सन्देह होने लगा कि हो सकता है किसी गरम गरम गोमांस को गर्व से ग्रास करने वाले व्यक्ति के साहचर्य का ही तो यह प्रभाव नहीं है? नहीं तो आर्यों के खाद्य की इतनी गहरी खोज हो ही कहां से सकती? यह सब सोचने पर भी यह बात समझ में नहीं आयी कि भारतीय पवित्र संस्कृति के प्रति लेखक के मन में ऐसा लिखने की भावना क्यों उत्पन्न हुई। उसी पुस्तक में लेखक के द्वारा भारत के प्रकाण्ड दार्शनिक जगत् प्रसिद्ध प्रामाणिक विद्वान् श्री राधाकृष्णन् को भी धिक्कार इसलिये दिया गया है कि वह उनके मत से सहमत नहीं हैं। इससे भी उनकी आर्य संस्कृति के प्रति दुर्भावना व्यक्त होती है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद मन में आया कि इस विषय में एक छोटी सी पुस्तक लिखकर देश को ऐसे विद्वानों से सावधान रहने की आवश्यकता बतला दूँ।

आपने वेद शास्त्र पुराणों के विषय में इस पुस्तक के द्वारा
तीय विद्वानों को विशद विचार प्रस्तुत करने की प्रेरणामात्र है
क्योंकि मैं एक साधारण मनुष्य हूं, मैं कोई धुरंधर विद्वान् भी नहीं
ईश्वर की इस सृष्टि में मैं सब जीवों से अति छोटा हूं। और
गुरु से श्रेष्ठ हैं। यह सब होते हुए भी मैंने इस पुस्तक में जो
लिखा है विद्वान् इसको पढ़कर इस विषय पर अधिक से अधि
प्रकाश डालें यही मेरा निवेदन है।

हमारे दादागुरु श्री पूज्यचरण नवलनाथजी महाराज योगेश
ने अपने इस मठ में चारों वेदों की संहिता १०८ उपनिषद, १८ पुरा
रामायण, महाभारत, षट्दर्शन, धर्मशास्त्र तथा अन्य अनेक उपयो
पुस्तकों का संग्रह किया था। इन पुस्तकों की सहायता से ही मैं
इस पुस्तक में अनेक विषयों पर विचार करने में कठिनाई का अनुभ
नहीं किया। इन पुस्तकों को यदि मैं अवलोकन न किये होत
अथवा सब पुस्तकें मेरे पास न होतीं तो सम्भव है मैं भी राहुलजी की
पुस्तक पढ़कर संदेह में पड़ जाता कि इनका लिखा हुआ विचार सत
है क्या ?

महापण्डित राहुलजी ने चाहे जिस आधार पर अपने विचा
व्यक्त किये हों किन्तु मैंने जहां तक वेदों, पुराणों एवं शास्त्रों का अध्य
यन किया है तथा विस्तृत महाभारत एवं रामायण आदि इतिहास पढ़ा
है उसमें यह कहीं भी नहीं साबित होता कि आर्य भारतवर्ष में कहीं
बाहर से आये थे। इन ग्रन्थों से तो यही सिद्ध होता है कि आर्य

ा से ही भारतीय हैं तथा यह भारत हो उनका मूल निवास स्थान । यदि ऐसा न होता तो इस देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त क्यों ता। सृष्टिकाल के प्रथम भारत सम्राट् मनु की मनुस्मृति में ट लिखा है—

आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं प्रचक्षते ॥४॥

पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक और विन्ध्य हिमालय के न्तर्गत सारा भूभाग आर्यावर्त कहा जाता है।

यह तो पण्डितजी को भी मालूम होगा ही कि राजा भरत के म से ही इस देश का नाम भारतवर्ष अथवा भरतखण्ड कहा गया । क्या भरत कहीं बाहर उत्पन्न हुए थे ?

वेदों से लेकर पुराणों तक में गोरक्षा गोसेवा आर्यजाति का र्म बतलाया गया है। गायों की रक्षा के लिये हमारे पूर्वजों भार- य आर्यों ने अपना तन, मन, धन दे दिया है। अनादि परम्परा वे गौ पर पूज्य बुद्धि रखते आये हैं। जब कभी गौ पर आपत्ति ो वहां दिलीप पाण्डव जैसे आर्यवीर प्राण देने को तत्पर हो गये । मारे देश के पूर्व राजाओं ने अपने पूज्य आचार्यों को दूध दही घी सुविधा के लिए अमूल्य धन के रूप में पवित्र गायों का दान किया रते थे।

पण्डितजी का कहना है कि विज्ञान की उन्नति संसार के याद हुई है किन्तु भारतीय ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता कल्प के आरम्भ से ही भारत में विज्ञान विद्यमान रहा है। य नवीन नहीं है। ईशा के जन्म होने से हजारों युग पहले ही में विज्ञान पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था। भारत में यज्ञ होते वेद अनादि न होते तो युगों पहले किन मन्त्रों से यज्ञ होता? शाला की स्थापत्यकला के बिना वह कैसे बनाई जाती? उसके गणित के बिना किस प्रकार भूमि की नाप तोल की जाती? ख के ज्ञान के बिना यज्ञ के समय का मुहूर्त का ज्ञान किस प्रकार हो महाराज मान्धाता के जामाता आचार्य सौभरि सतयुग में उत्पन्न थे। उनको ऋग्वेद का आचार्य बतलाया गया है। यदि उस युग ऋग्वेद न होता तो वह उसका आचार्य क्योंकर होते? इसी प्र कहा जाता है कि रावण ने त्रेता युग में वेदों पर भाष्य रचा थ उस युग में वेद न होते तो उसका भाष्य कहां रचा जाता?

इन सब प्राचीन बातों का स्मरण करके मैंने यहां जो कुछ लिख है वह वादविवाद के लिए नहीं प्रत्युत इसलिये कि विद्वान् इस विष पर विचार करें कि कौनसी बात प्रामाणिक है और कौनसी काल्पनिक है।

वेदों एवं भारतीय विज्ञान की प्राचीनता को स्मरण कराने का का तात्पर्य नहीं है कि हम केवल प्राचीन को ही मानते हैं और आधुनिक विज्ञान को अच्छा नहीं मानते। विज्ञान सदा अच्छा है

चाहे वह नवीन हो चाहे प्राचीन। किन्तु उसकी अच्छाई को परखने की कसौटी है विश्व का हित विश्वविनाशकारी अस्त्रों को छोड़कर यदि विज्ञान जनहितकारी कार्य करे तो उसका आदर कौन नहीं करेगा? भारतीय भी भौतिक विज्ञान में बढ़े थे किन्तु दया अहिंसा त्याग आदि अपने सस्कारों तथा गुणों को नहीं भूले थे यही कहने का मेरा तात्पर्य है। हम भी चाहते हैं कि हमारे देश में भौतिक विज्ञान बढ़े किन्तु अपने आदर्शों के साथ बढ़े। हमारा विरोध केवल उन विचारों से है जो आर्यों को भारत में बाहर से आया हुआ मानते हैं इनको गोभक्षक बतलाते हैं, वेदों को मनुष्यकृत आधुनिक तीन चार हजार वर्ष पूर्व का ग्रन्थ बतलाते हैं, बुद्धि का विकास ईसा के पश्चात् दिखलाते हैं तथा हमारे पूर्वज वनमानुष विज्ञानशून्य थे ऐसा कहते हैं। इन बातों से कोई भी भारतीय जिसने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया हो सहमत नहीं हो सकता।

प्राचीन इतिहास को पढ़ने से पता चलता है कि हमारा देश महाभारत युद्ध से पहले ज्ञान विज्ञान में खूब बढ़ा चढ़ा था। बस युद्ध को हुए आज ५००० वर्ष बीत चुके हैं। इस बीच में हमारे देश का सब तरफ से पतन हो गया। इससे पहले इस देश में आकर अन्य देश के भी मनुष्य शिक्षा ग्रहण करते थे। उसी युद्ध के कारण हमारी सब विद्याएं लुप्त हो गईं और हम परतन्त्र हो गये। हमारे लाखों ग्रन्थ जला डाले गये। इस दुर्दशा के प्रत्यक्षदर्शी कवि ने लिखा है—

भारतीय प्राचीन युग [illegible]. [illegible] विमान [illegible]

इस घोर समय में श्री स्वामी आदि ने यदि अपनी सं-
स्कृति को सुरक्षित रक्खा है तो एकमात्र इस देश पर परमेश्वर
[illegible] है। इसी परमपिता परमेश्वर की कृपा से भारत को
यह स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है अब हमारे देश के मान्य नेता
भारतीय प्राचीन विज्ञान की खोज करने में कुछ ध्यान देने लगे
यदि इस तरफ पूर्ण ध्यान दिया गया तो आशा है भारतवर्ष पुनः
ही उन्नत हो जायगा जैसा कि महाभारत युद्ध होने से पूर्व में था।

अब मैं कुछ उन पौराणिक कथाख्यानों का उल्लेख कर र[हा हूँ]
जिससे मालूम होगा कि प्राचीनकाल में भारत देश का विज्ञान कि[तना]
आगे बढ़ा हुआ था।

१—राजा कुवलयाश्व के पास जलस्थलनभोगामी विमान था
उस विमान से उसने मरुभूमि के रेतीले टीलों पर रहने वाले धुन्[धु]
नामक राक्षस पर आक्रमण किया था और उसको मार डाला था
इसी के कारण उस सूर्यवंशी राजा का नाम धुन्धुमार पड़ गया
उस समय विमान को आकाश में उड़ने वाला घोड़ा भी कहा जात[ा]
था। (स्कन्दपुराण नागर खण्ड)

२—वाल्मीकीय रामायण में लंका के युद्ध में विमानों का
प्रयोग हुआ लिखा है। मेघनाद विमान से लड़ा था। पुष्पक विमान
पर चढ़कर राम लंका से अयोध्या को लौटे थे।

३—महाभारत के द्रोण पर्व (अध्याय ६२) में लिखा है कि—राजा रघु के पिता दिलीप के पास जलस्थल नभ में चलने वाला एवं कहीं भी न रुकने वाला विमान था।

४—चन्द्रवंशी राजा ययाति के पास स्वर्णमय सुन्दर विमान था। यह सब प्रकार की सामग्री से सुसज्जित था। वह विमान मनोवेग से इच्छानुसार कहीं भी जा सकता था। उसके बल से वह राजा सातों द्वीपों पर राज्य करता था। उसने उस विमान को अपने छोटे पुत्र महाराज पुरु को दिया था। यह विमान उनके वंशधर राजा जनमेजय तक के पास रहा। (ब्रह्माण्डपुराण अध्याय ६८)

समान्तर में इन विमानों को जनता उड़न खटोला, उड़नेवाला घोड़ा और हवाई जहाज कहने लगी।

अन्य पुराणों में भी कई प्रकार के शस्त्रों एवं अस्त्रों के वर्णन मिलते हैं। शक्ति (हथगोला), शतघ्नी तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) मोहनास्त्र, आग्नेयास्त्र, महास्त्र आदि उस समय भी मौजूद थे। इससे विदित होता है कि उस युग में भी भारत में विज्ञान मौजूद था।

अस्त्र शस्त्रों के अतिरिक्त भी आर्य वेद वेदांगों में प्रकाण्ड विद्वान होते थे। वैदिक नित्य कर्म, अध्यात्म विद्या, अष्टांगयोग, राजयोग, भक्तियोग इनके जीवन के अंग थे। संप्रति [illegible] में भारत ही सबसे आगे है। [illegible] यह देश सदा लगा रहा है। पति एवं [illegible] । में

उत्पन्न हुए हैं जिनके चरणों में अष्टसिद्धियां उपस्थित रहती थीं। गोरक्ष, गरुड़, गालव, भीष्म, हनुमान इनमें प्रमुख माने जाते हैं। इस देश की स्त्रियों में अनुसूया, सीता, सावित्री, शाण्डिली, गार्गी मैत्रेयी, सुलभा, अरुन्धती, चूड़ाला, प्रभृति परम विदुषी थीं।

समाधि योग में आरण्यक जंगलों में रहने वाले महर्षि ही बल्कि सद्गृहस्थ भी इस विद्या में निपुण थे। याज्ञवल्क्य, जन भीष्म, द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा प्रभृति सब योग में निपुण थे। युद्धभू में भी मृत्यु के समय समाधि लगाकर शरीर त्यागते थे। हम पूर्वजों की भावना भौतिक की तरफ गौण थी। उनका मुख्य ल आध्यात्मिक शान्ति थी। वेद उपनिषद गीता के द्वारा प्रतिपादि ज्ञान को ही आर्य सदा से मुख्य अपना लक्ष्य मानते आये हैं।

वर्तमान समय में भी श्री स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, लो मान्य तिलक, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि महात्माओं मुक्तकंठ से कहा है कि सच्ची शान्ति भौतिक उन्नति से नहीं मिलेगी प्रत्युत इससे उल्टा भेदभाव, परस्पर भय एवं संदेह की ही वृद्धि होगी अतः कूट कपट मतमतान्तर का परित्याग करके तथा एक दूसरे क दबाने के लिए शस्त्रवृद्धि को छोड़कर अध्यात्म विद्या के द्वारा ही स के साथ प्रेमपूर्वक भ्रातृभाव अथवा सबको एक परमेश्वर की सन्तान समझकर सबसे प्रेमपूर्वक बर्ताव करना वास्तविक भगवान की पूज तथा सच्ची शान्ति का उपाय है। यही बात गीता में भी श्रीकृष्ण . . ने कहा है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन !

वस्तुतः गीता में समता पर ही अधिक बल दिया गया है। आज भी तो हमारे वर्तमान नेता राष्ट्रपति श्री बाबू राजेन्द्रप्रसादजी तथा प्रधान मन्त्री पण्डित श्री जवाहरलालजी नेहरु यही बात कहते हैं। पंचशील का सिद्धान्त भी इसी आधार पर स्थित है। अतः भारतवर्ष भौतिक उन्नति के साथ अपनी आध्यात्मिक उन्नति पर भी इस देश एवं विश्व का कल्याण हो सकता है।

हमारे देश में एक ही सम्राट् चक्रवर्ती राजा में सारी प्रजा अपने अपने धर्म-कर्म में किया करती थी। उस समय शिरोधार्य मानकर बड़ी ही शान्ति से की आज्ञा का पालन समस्त के राजसूय यज्ञ में तथा महा- सब देशों के राजा आये थे। भगदत्त) बिडालाक्ष (यूरोप) यवन (यूनान) का राजा ही समस्त भूमण्डल पर

कुटिलता से महाभारत युद्ध हुआ। पुरुषों का संहार हो गया। अथवा अन्यायी वही भारत का

उत्पन्न हुए हैं जिनके चरणों में अष्टसिद्धियां उपस्थित रहती थीं। गोरख, गरुड़, गालव, भीष्म, हनुमान इनमें प्रमुख माने जाते हैं। इस देश की स्त्रियों में अनुसूया, सीता सावित्री, रुक्मिणी, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, अरुन्धती, मृदालसा, प्रभृति परम विदुषी थीं।

समाधि योग में आरण्यक जंगलों में रहने वाले महर्षि ही नहीं बल्कि सद्गृहस्थ भी इस विद्या में निपुण थे। याज्ञवल्क्य, जन भीष्म, द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा प्रभृति सब योग में निपुण थे। युद्ध में भी मृत्यु के समय समाधि लगाकर शरीर त्यागते थे। ह पूर्वजों की भावना भौतिक की तरफ गौण थी। उनका मुख्य ल आध्यात्मिक शान्ति थी। वेद उपनिषद गीता के द्वारा प्रतिपा ज्ञान को ही आर्य सदा से मुख्य अपना लक्ष्य मानते आये हैं।

वर्तमान समय में भी श्री स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, लो मान्य तिलक, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि महात्माओं मुक्तकंठ से कहा है कि सच्ची शान्ति भौतिक उन्नति से नहीं मिले प्रत्युत इससे उल्टा भेदभाव, परस्पर भय एवं संदेह की ही वृद्धि हो अतः कूट कपट मतमतान्तर का परित्याग करके तथा एक दूसरे दबाने के लिए शास्त्रवृद्धि को छोड़कर अध्यात्म विद्या के द्वारा ही के साथ प्रेमपूर्वक भ्रातृभाव अथवा सबको एक परमेश्वर की सन समझकर सबसे प्रेमपूर्वक वर्ताव करना वास्तविक भगवान की तथा सच्ची शान्ति का उपाय है। यही बात गीता में भी श्रीकृ भगवान् ने कहा है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन !

वस्तुतः गीता में समता पर ही अधिक बल दिया गया है।
ज भी तो हमारे वर्तमान नेता राष्ट्रपति श्री बाबू राजेन्द्रप्रसादजी
। प्रधान मन्त्री पण्डित श्री जवाहरलालजी नेहरु यही बात कहते
पंचशील का सिद्धान्त भी इसी आधार पर स्थित है। अतः
तवर्ष भौतिक उन्नति के साथ अपनी आध्यात्मिक उन्नति पर भी
। रहे तभी इस देश एवं विश्व का कल्याण हो सकता है।

महाभारत से पहले हमारे देश में एक ही सम्राट् चक्रवर्ती राजा
करता था। उसके राज्य में सारी प्रजा अपने अपने धर्म-कर्म में
कर देश की उन्नति शान्तिपूर्वक किया करती थी। उस समय
ईश्वरीय आदेश वेदों को शिरोधार्य मानकर बड़ी ही शान्ति से
बिताते थे। भारतीय सम्राट् की आज्ञा का पालन समस्त
रते थे। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में तथा महा-
युद्ध में उनकी आज्ञा से सब देशों के राजा आये थे। भगदत्त
) बभ्रुवाहन (अमेरिका) बिडालाक्ष (यूरोप) यवन (यूनान)
वेदित होता है कि आर्यावर्त का राजा ही समस्त भूमण्डल पर
करता था।

ष्ट दुर्योधन एवं शकुनि की कुटिलता से महाभारत युद्ध हुआ।
मिस्त विज्ञानविद् अध्यात्मवेत्ता पुरुषों का संहार हो गया।
गे भी बलवान हो न्यायी, अथवा अन्यायी वही भारत का

राजा बन बैठा। परस्पर में फूट हो गई। भाई भाई की यह दशा थी तो देश की दशा कैसे सुधरे। विदेशियों ने आक्रमण करके इस देश को नष्ट एवं भ्रष्ट कर दिया। अच्छे ग्रन्थ जला दिये। वैदिक धर्म के ह्रास के कारण अनेक मत चल पड़े। मनमाने पन्थ खड़े हो गये। क्यों कि किसी का भय नहीं रहा। उधर विदेशियों ने भारत के प्राचीन इतिहास को नष्ट करने में कोई कसर न छोड़ी। फिर भी हमारे देश के सन्त महात्माओं ने एवं संस्कृत के विद्वान् ब्राह्मणों ने उसको सर्वथा लुप्त नहीं होने दिया। अब जो कतिपय भारतीय इसको नष्ट करने का प्रयास करने में लगे हैं उनकी इच्छा कभी पूरी न होगी। क्योंकि इस देश पर भगवान की दया रहती है। यहां के सत्कर्मशील विद्वान अब भी अपने प्राचीन संस्कारों को न लुप्त होने देंगे और इसकी रक्षा करेंगे।

यह भारतभूमि स्वर्णमय पारसमणि रूप सर्व देशों में श्रेष्ठ है। यह आर्यों की मातृभूमि है। इस पर जब आपत्ति आती है तब भगवान यहां अवतार लेते हैं। चौबीस अवतारों की कथा हम भूले नहीं हैं। अंगिरा आदि महर्षि गोरक्षनाथ आदि नवनाथ चौरासी सिद्धों का हमारे ग्रन्थों में वर्णन है। इस कलि में भी शंकराचार्य, रामानुज, चैतन्य महाप्रभु आदि आचार्य तथा दयानन्द, तिलक, गांधी, जैसी विभूतियां यहां प्रकट हुई हैं और होती रहेंगी।

यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽश संभवम्॥

इस गीता की उक्ति के अनुसार जिसमें उदारता, वीरता, धीरता, की अधिकता हो वह ईश्वरीय विभूति होता है।

जिस प्रकार महाभारत काल के पहले भारत में मतमतान्तर नहीं थे केवल वैदिक धर्म था आज भी यदि भारतीय विद्वान ईर्ष्याद्वेष का परित्याग करके अपने को तथा देश को इस रास्ते पर लाना चाहें तो ला सकते हैं। देश का और समाज का भविष्य विद्वान ही सुधारते हैं और बिगाड़ सकते हैं।

हमारे पुराण १८ हैं। उनके नाम हैं—ब्रह्म, पद्म, विष्णु शिव, वामन, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, आग्नेय, स्कन्द, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वाराह, मत्स्य, कूर्म, ब्रह्माण्ड, भविष्य। इन पुराणों में परमात्मा से ब्रह्मा और वेदों की उत्पत्ति तथा ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि अंगिरा वसिष्ठ आदि की उत्पत्ति उनके वंश परम्परा तथा ब्रह्मा की आयु का प्रमाण युगों का प्रमाण, वंशानुचरित, महाकल्प का आरम्भ एवं अन्त (प्रलय का वर्णन किया गया है। इनका कर्ता सर्वज्ञ व्यास हैं। इनमें यद्यपि भिन्न २ पुराणों में भिन्न २ देव की प्रधानता बतलाई गई है किन्तु उसका तात्पर्य केवल उपासक की रुचि बढ़ाने में है। किसी देवता की निन्दा में तात्पर्य नहीं है। कल्प भेद से कथाओं में कहीं कहीं भेद है। इन सब पुराणों का तात्पर्य यह है कि वेद, ऋषि, ब्रह्मा आदि देव सब एक ही परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं। अन्त में उसी अपने कारण परमात्मा में लीन होंगे। मध्य में भी सब परमात्मा के ही रूप हैं। यही हमारे समस्त शास्त्रों का

मन्तव्य है। वेद पुराण एवं स्मृतियों का अद्वैत परमात्मा में ही पर्यवसान है यहाँ इनमें किसी का खण्डन मण्डन नहीं है।

इन पुराणों को देखने से उन लोगों के मत का खण्डन हो जाता है जो वेद को ईसा से पूर्व १५०० वर्ष का मानते हैं।

वस्तुतः पुराणों के अनुसार स्वयंभू-मनु एवं सृष्टि को उत्पन्न हुए १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार और छप्पन वर्ष हो चुके हैं। वाराह कल्प संवत् चारों वेदों की संहिताओं एवं दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश में लिखा हुआ है। स्वयंभू-मनु के राज्य काल में मनुस्मृति विधान बना था। उसमें वेदों का उल्लेख है। गीता महाभारत काल में बनी है उसमें भी "यदक्षरं वेदविदो वदन्ति" "वेदानां साम-वेदोऽस्मि" इत्यादि स्थलों में वेद का नाम आया है। यदि वेद ईशा के पूर्व १५०० वर्षों में बने तो उस समय उसका नाम इन ग्रन्थों में कहां से आया? क्या आधुनिक थोथे विचारकों ने इन ग्रन्थों को देख करके लिखा है अथवा केवल कपोल कल्पना की है? इन स्मृतियों को न मानकर अर्थ का अनर्थ करना केवल उनकी थोथी विद्वत्ता का उन्माद ही कहा जा सकता है।

कोई लिखते हैं कि उपनिषद वेद से भी पूर्वकालीन हैं। सो उपनिषदों का अध्ययन उन्होंने आचार्यों के द्वारा शायद ही किया होगा। यदि वे स्वयं सिद्ध पंडित मानी न होते तो उपनिषदों के विषय में ऐसा न लिखते क्योंकि वेद की शाखा ही तो उपनिषद हैं। दोनों

में कोई भेद नहीं है। वेदों के परिचय के लिये यहां संक्षेप में उनको शाखाएं लिख रहा हूँ—

ऋग, यजुः, साम, अथवर्ण, इन चारों वेदों में २१ शाखाएं ऋग्वेद की १०१ शाखाएं यजुर्वेद की १००० शाखाएं सामवेद की ४० शाखाएं अथवर्ण की मानी जाती हैं। उपनिषद वेद की शाखा हैं।

उपनिषद ११८० थे इनमें रामचन्द्रजी ने १०८ उपनिषदों का उपदेश रामदूत को दिया था उनके नाम इस प्रकार हैं—

ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय ऐतरेय, छन्दोग्य, बृहदारण्यक, ब्रह्म, कैवल्य, जाबाल, श्वेताश्वतर, हँस आरुणि, गर्भ, नारायण, परमहंस, नादबिन्दु, योगशिखा, मैत्रेयी, कौषीतकि, बृहज्जाबालि तापनि, रुद्रकालाग्नि, मैत्रायण्य सुवाल, क्षुरमन्त्रिका, सर्वसार, निरालंब, रहस्य, वज्रसूची, तेजोबिन्दु, ध्यानबिन्दु, योगतत्व, आत्मबोधक परिव्राट्, त्रिशिखी, सीता, योगचूडामणि, निर्वाणमंडल, दक्षिणा, सरभ, स्कन्ध, महानारायण, अद्वय, रामतापन्य, वासुदेव, मुद्गल, शाण्डिल्य, पिंगल भिक्षु, महो, शारीरिक, शिखा, तुरीयातीत, सन्यास, परिव्राजक, अक्षमालिक, अव्यक्त, अक्षर, पूर्ण, सूर्य, अक्षि अध्यात्म, कुण्डिक, सावित्र्य, आत्म, पाशुपत्य, परब्रह्म, अवधूत, त्रिपुरातपन, देवीत्रिपुरा, कठभावन, हृदय, कुण्डलि, भस्म, रुद्राक्ष, गणपति, तारसार, महावाक्य, पञ्चब्रह्म, अग्निहोत्र, गोपालतापनि, कृष्ण, याज्ञवल्क्य, वाराह, शाट्यायनि, हयग्रीव, दत्तात्रेय, गरुड़,

कलितार, जाबली, सौभाग्यरहस्य, रिचमुक्तिका, इत्यादि १०८ शाखाभेद देखने में आता है। इनका विवरण इस प्रकार है—ऋग्वेदान्तर्गत यजुर्वेद की ५१ शाखाएं हैं उनमें शुक्ल यजुर्वेद की १६ और कृष्ण यजुर्वेद की ३२ शाखाएं हैं। सामवेद की १६ शाखाएं हैं और अथवर्ण की ३१ इस प्रकार मिलकर सब १०८ होती हैं।

इन उपनिषदों में माण्डूक्य पर गौड़पादाचार्य ने टीका की है। जगद्गुरु शंकराचार्यजी ने १० उपनिषद् पर भाष्य लिखा है। स्वामी श्री शंकरानन्दजी ने २५ उपनिषदों पर भाष्य किया है। विद्यारण्य आचार्य ने १०८ पर भाष्य किया है।

अब जिन जिन आचार्यों ने जिस जिस उपनिषद् का जिस जिस को उपदेश दिया है उनको संक्षेप में यहां दिखलाया जा रहा है। ऋग्वेद की शाखा ऐतरेय उपनिषद् को सनक आदि ने नागदेव को उपदेश दिया। इसी वेद की शाखा कौषीतकि उपनिषद् को अजातशत्रु ने बालाकि को उपदेश किया। यजुर्वेद की शाखा बृहदारण्यक को याज्ञवल्क्य ने आश्वलायन को उपदेश दिया। फिर इसी को इन्द्र और अश्विनीकुमार ने दध्यङ् को उपदेश दिया। पुनः इस पर याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद हुआ। पुनः इसी को याज्ञवल्क्य ने अपनी स्त्री मैत्रेयी को उपदेश दिया। यजुर्वेद के श्वेताश्वर उपनिषद में संन्यासियों का संवाद है। यजुर्वेद शाखा की कठवल्ली उपनिषद् को यम ने नचिकेता को उपदेश दिया। इसी वेद की तैत्तिरीय शाखा को वरुण ने भृगु को बतलाया। सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद् को

उद्दालक ने श्वेतकेतु को उपदेश किया। इसी वेद की शाखा छांदोग्य के विषय में सनत्कुमार और नारद का संवाद हुआ। ब्रह्मा, इन्द्र विरोचन का संवाद भी है। सामवेदीय केन उपनिषद में उमादेवी का इन्द्रादि के प्रति ब्रह्मविद्या का उपदेश है। अथर्ववेद की शाखा मुण्डकोपनिषद में अंगिरा मुनि एवं प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद सुकेश आदि का संवाद है तथा अथर्व की शाखा नृसिंहतापनि में प्रजापति का देवताओं के प्रति उपदेश है।

वेद अपौरुषेय इसलिये नहीं कहा जाता है कि उसका कर्ता ज्ञात नहीं है। कोई अवतारी अथवा ऋषि मुनि योगेश्वर देहधारी अपनी बुद्धि के अनुसार जिस ग्रन्थ को रचते हैं वह पौरुषेय होता है क्योंकि उसका कर्ता ज्ञात रहता है। उसकी उपज किसी के मस्तिष्क से होती है।

ब्रह्मा आदि को ईश्वर जिस अनादि वेद का उनके हृदय में भान कराता है वह अपौरुषेय कहा जाता है। ईश्वर की कृपा से ही ऋषियों के हृदय में स्वयं वेद का स्फुरण हुआ है। ईश्वर ने वेद को ब्रह्मा के लिये भेजा इस विषय में श्रुति प्रमाण है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

श्वेताश्वतर अ० ६ मं० १

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चंद्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः॥

मु० उ० खण्ड १ मं० ४

उक्त श्रुतियाँ वेद का ईश्वर से प्रकट हुआ सिद्ध करती हैं। यदि किसी को यह शंका हो कि वेदों के विषय में वेद को ही प्रमाण देना उचित नहीं है तो इसका समाधान यह है कि जो स्वतः प्रमाण है उसको दूसरे प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं होती। जैसे चीनी मीठी होती है आग उष्ण होती है इनके लिए ये प्रमाण स्वयं हैं इसी प्रकार वेद अपने भी विषय में स्वतः प्रमाण है। वेद से ही अन्य ग्रन्थों की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। हमारे सनातन धर्म परम्परा में यह मान्यता है कि वेद विरुद्ध वचन चाहे शिव और ब्रह्मा भी कहें तो वह अमान्य समझा जाता है। वेदों के अनुकूल साधारण से भी साधारण का वचन मान्य होता है। गीता स्वयं वेद नहीं किन्तु सारे उपनिषदों का सार है अतः उसका वेदवत् सम्मान है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

इस उक्ति के अनुसार गीता को उपनिषद् का सार अमृत बतलाया गया है। इस पर विचार करना चाहिये कि यदि वेद की रचना राहुलजी के मत से ई० पू० १५०० वर्ष में हुई मान ली जाय तो द्वापर में कृष्ण के द्वारा वेदों का सार गीतामृत अर्जुन को देना कैसे संगत होगा? पांच हजार वर्ष पहले व्यास ने महाभारत भीष्म पर्व में जिस ७०० सौ श्लोक की गीता का संग्रह उपनिषदों से किया है? इस विषय में तथ्य एवं अतथ्य विद्वानों को समझ लेना चाहिए।

के द्वारा रचित होते हैं। ईश्वरीय अचिन्त्य वेद के विषय में खण्डन मण्डन करने का तरीका अपनाना एक भारतीय के लिये जघन्य कार्य है।

समय के फेर से विज्ञानी पुरुषों की कमी होने से नवीन आविष्कार लुप्त हो जाते हैं। पुनः कभी समय के फेर से वृद्धि भी हो जाती है। आविष्कारमात्र करने से ससार में कोई नया तत्व नहीं बनता। आकाश पृथ्वी पवन जल अग्नि सब तत्व ईश्वर कृत हैं केवल बुद्धिमान पुरुष इनके संयोग विशेष के द्वारा ईश्वर कृत तत्वों से बिजली मोटर रेल हवाई जहाज आदि बनाकर उसके कर्ता नहीं माने जा सकते क्योंकि उसमें सारा का सारा पुर्जा ईश्वर कृत मिट्टी लोहे आदि से बना हुआ है। केवल इसमें बुद्धि का चमत्कार कहा जा सकता है।

यदि किसी को सन्देह हो कि निराकार ईश्वर से वेद कैसे प्रगट हुए तो उसका समाधान यह है कि यह साकार सृष्टि जो कुछ दीख रही है वह भी तो निराकार ईश्वर से बनी हुई है। निराकार के कार्यों का प्रत्यक्ष होता ही है जैसे आकाश निराकार है किन्तु शब्द क्रिया से उसका प्रत्यक्ष भी होता है। क्योंकि शब्द आकाश का गुण है गुण और गुणी में अभेद होता है। न देखने मात्र से किसी की सत्ता का अभाव

नहीं कहा जा सकता। आकाश में जलकण पहले सूक्ष्म रूप से रहते हैं तथा नहीं दिखाई देते पुनः जब बादल के रूप में परिणत हो जाते हैं तब साकार ओला भी बन जाते हैं। वही पुनः आकाश में उड़कर अदृश्य भी हो जाते हैं। इसी प्रकार हवा अमूर्त निराकार होती है किन्तु पंखे की क्रिया से उसका प्रत्यक्ष किया जाता है।

इसी प्रकार निराकार परमात्मा से वेद और सृष्टि प्रकट होकर भान होते हैं और पुनः उसी में लीन हो जाते हैं। अतः वेद स्वयंभू साक्षात् नारायण स्वरूप है। यस्य निःश्वसितं वेदाः "श्रुति है। इसी का याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को उपदेश दिया है। वहां बतलाया कि ऋग्, यजुः साम, शतपथ सब वेद उसी लीलामय विभु परमेश्वर के निःश्वास हैं। यह नारायण रूप अपौरुषेय वेद अनादि है और अनन्त कल्पों के पूर्व भी विद्यमान था यही हमारे ऋषियों का सिद्धान्त है। यही आर्यों का मूल ग्रन्थ है।

अपौरुषेय कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि इसको किसी ने प्रकट नहीं किया है या अन्धविश्वास के कारण अपौरुषेय कहते हैं। इसका भान महर्षियों के हृदय में ईश्वर की कृपा से होने के कारण तथा किसी मनुष्य के रचित न होने के कारण यह अपौरुषेय माना जाता है। हमारे पूर्वज आचार्य ऋषि सदा सत्यवादी थे वे सर्वथा आप्त पुरुष थे इन संयमी सत्यवादी पुरुषों के द्वारा शुद्ध हृदय से सोच विचार कर लिखे हुए सिद्धान्त मिथ्या नहीं हो सकते। इनके

वचनों पर आर्य सदा से विश्वास करते आ रहे हैं अब भी किसी के बहकाने से यह विश्वास नहीं लुप्त हो सकता। मैंने यह विचार अपने मन गुरुओं श्री नवलनाथजी योगेश्वर एवं श्री गुरु महाराजजी उत्तमनाथजी से सुने हैं जिनको समग्र उपनिषद कंठस्थ थे एवं जो स्वयं तपोनिष्ठ त्यागमूर्ति थे जिनके मनमें वेद वेदान्त के प्रति अटल निष्ठा थी। जब कतिपय विद्वान वेद को ईश्वर रचित कहने मात्र से उत्कर्ण हो जाते हैं तो राहुल के कहने से मनुष्यकृत वे वेदों को क्यों मानेंगे।

यदि अब भी किसी की समझ में वेदों का ईश्वर से प्रकट होने में सन्देह हो तो उससे मैं पूछता हूं कि आकाश पवन पृथ्वी जल एवं अग्नि को किसने बनाया? वृक्षों के बीज पहले किसने रचे? एक जल को भिन्न भिन्न वृक्षों में जैसे नीम में कटु ईख में मधुर, मिर्च में तीखा, नींबू में खट्टा किसने बनाया? नीम के पत्तों को कंघीदार किस मिस्त्री ने बनाया तथा फूलों को भिन्न भिन्न रंग से किसने रंग दिया? एक पानी की बून्द से मनुष्यों के सुन्दर नेत्र कान हाथ पैर कौन रचता है? मनुष्यों के शरीर में रोम दाढ़ी मूंछ कौन उगाता है? मयूर के पर किसकी कारीगरी हैं? अरे इस विश्व की सारी विचित्रता ही अपौरुषेय है तो वेद अपौरुषेय मानने में क्यों सन्देह करते हैं?

जो वेद ईश्वर की कृपा से ब्रह्मा को भान हुआ वही फिर ऋषियों को भी भान हुआ। ब्रह्मा को एक वेद का भान हुआ उस समय एक

वेद था पुनः शाखा भेद से उसी को भिन्न भिन्न माना गया। भगवान् ने राजा पुरुरवा के हृदय में उसी वेद को स्फुरित किया। उन्होंने अग्नि के तीन भेद किये जिससे उनका नाम जातवेदा कहा गया। अग्नि के तीन भेद आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि भागवत नवम स्कन्ध में लिखे हैं।

द्वापर के अन्त में जब मनुष्य अल्पायु होने लगे तब भगवान् वेद व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए और वेद को चार संहिताओं में विभाग करके ऋक्संहिता अपने शिष्य पैल को अध्यापन कराया तथा यजुः संहिता वैशम्पायन को पढ़ाया। सामवेद छान्दोग्य को जैमिनि को पढ़ाया तथा अथर्वण संहिता सुमन्त को। आगे चलकर पुनः मानव बुद्धि का ज्यों ज्यों ह्रास होता गया त्यों त्यों आचार्यों ने उसको सुगम करने के लिए वेदों पर भाष्य रचे।

आज जब अधिकांश आर्य संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ हो रहे हैं तब वेद उपनिषद् पुराण तथा शास्त्रों का अर्थ हिंदी आदि जनभाषा में विद्वान लिख रहे हैं। समय समय पर सुगमता के लिये प्रयास होता रहता है इससे हम वेदों को मनुष्य रचित नहीं कह सकते। व्यास ने केवल वेद को चार विभागों में विभक्त किया है न कि वेदों को बनाया है क्योंकि व्यास शब्द का अर्थ है सूक्ष्म अबोध बात को अपनी युक्ति से सुबोध कर दे।

आज भारत के विद्वान इतने दास वृत्ति के हो गये हैं कि किसी विदेशी की साधारण सी साधारण पुस्तक को श्रेष्ठ मानते हैं और

उनको ही प्रमाण देने में अपना गौरव समझते हैं। उन तुच्छ पुस्तकों के आधार पर अपने वेद शास्त्र पुराणों को मिथ्या कहते हैं। पहले तो अपने देश के प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ते ही नहीं पढ़ते भी हैं तो अरुचिपूर्वक, यह भारत का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है।

किन्तु अब स्वतन्त्र भारत में भारतीय अपनी दास मनोवृत्ति को त्याग करके पुनः अपने देश एवं अपने साहित्य का आदर करना सीखें यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है। इस पुस्तक को लिखने का भी उद्देश्य यही है कि दास मनोवृत्ति के पुरुषों के द्वारा की हुई वेदों की निन्दा पर ध्यान न देकर आर्यगण अपनी अमूल्य सम्पदारूप वेद पुराण एवं समस्त संस्कृत वाङ्मय के जीर्णोद्धार में जुट जायँ जिससे अपने देश समाज तथा समस्त विश्व का परम कल्याण हो।

कृतज्ञता प्रकाशन

अन्त में मैं उन समस्त आर्य प्रकाण्ड विद्वानों तथा तपोनिष्ठ महात्माओं के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन करते हुए भूरि भूरि आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने सहानुभूति पूर्वक इस ग्रन्थ के विषय में अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान करके हमें उत्साहित किया है। विशेष करके श्री पं० लक्ष्मीचन्द्रजी मिश्र व्याकरणाचार्य एवं श्री पं० चण्डीप्रसादजी शर्मा व्याकरण न्याय साहित्याचार्य को मैं नहीं भूल सकता, इस ग्रंथ को सुव्यवस्थित मुद्रण योग्य करके जिन्होंने प्रुफ संशोधनादि कार्यों के द्वारा

आर्य सन्तान

हम कपि से उपजे नहीं, आर्य मनुज सन्तान।
भारत मूल निवास है, वेद हमारा मान ॥१॥
विद्यात्रय संयुक्त जो, आर्य वही गुणधाम।
न्यारे जो इनसे हुए, पाये दस्यु कुनाम ॥२॥
देव पितर भी स्वर्ग में, करे हमारी आश।
वेद शास्त्र में देखलो विमल आर्य इतिहास ॥३॥
विहित कर्म करके यहां जाते हैं सुर-धाम।
क्षीण पुण्य से भूमि पर, फिर पाते विश्राम ॥४॥
पूज्य पंचसुर विष्णु शिव, गणपति शक्ति दिनेश।
ऋषि मुनि वेद पुराण का, रखते स्मरण विशेष ॥५॥
गोरक्षक, भक्षक नहीं, करते गो – सम्मान।
गो रक्षाहित सर्वदा, हम तजते हैं प्रान ॥६॥
संस्कृति से संस्कृत यहां, हम हैं ऋषि सन्तान।
निज गौरव निज देश का, है हमको अभिमान ॥७॥

स्वामी विवेकनाथ शिष्यो
निरञ्जननाथः
प्रबन्धक
विवेक ग्रन्थमाला, बीकानेर

गुरुपरम्परास्मरणम्

अभूच्छिष्यः शम्भोर्दिनमणिरयं चन्द्रशिखः
प्रधानो मत्स्येन्द्रोऽभिनव (पद) गुप्तार्यकमली ।
स लोकानां नाथः शिवसुत-भवानीसुत महा-
यशाशः सिद्धेशो यमनियमगोप्ता यमजयी ॥१॥

त्रिनेत्रो यः साक्षात् शिव इव सदा योगनिरतः
शिवांशोऽभूद्योगी शिरसि विधुभूषा विलसितः ।
अमात्रो मात्राणां सृजन परियत्ने परिदृढः
सुशिष्यो मात्स्येंद्रस्तरुणरवि-गोरक्ष इति सः ॥२॥

गभीरं यद्भाष्यं विनतशतभाष्यं पदविदाम्
महाभाष्यं लोके फणिपतिगिरां सारमतुलम् ।
हरिश्चक्रे योऽग्रथित विमलां वाक्यपदवीं
विनेयो गौरक्षोऽभवदतिमहौजाः स नृपतिः ॥३॥

तदंशे वद्वंशे ननु च चिडियानाथ पदभृत्
स योगानां पुर्यां किल ललितपालाशनिमठे ।
हठी योगाध्यक्षः कनकपुरवि ख्यात विदितः
स आसीद् दिव्यात्मा यमि जनसमूहेन कलितः ॥४॥

तदग्रे तद्वंशे शमदम पधानां प्रथयिता
बनानाथःसिद्धो यमनियमशुद्धो यतिरभूत् ।
स वेदानां वेत्ता त्रिगुणगणभेत्ता गुणिनुतः
पुराणेपूत्तीर्णो जितशतकरीन्द्रः खलु वशी ॥५॥

बनानाथस्यायं किल नवलनाथः समभवत्
सुधीरः सच्छिष्यः सृतिजनितशोकापहरणः ।
अजेयः शास्त्रार्थे रमविधि विधाने पटुतमः
क्रियासिद्धः सिद्धः कुलिशगुरु गोरक्षनिरतः ॥६॥

महाराजः सोऽयं किल नवलनाथो मरुधरा-
प्रसिद्धः सिद्धोऽभूत् प्रयतहृदयः पूजितवरः ।
नृपैर्गङ्गा सिंहैर्नुत पदयुगो ज्ञाननिकर-
स्तपस्वी कर्मन्दी जयति विपुलो ज्ञान-सविता ॥७॥

अभूच्छान्तो दान्तो नवलगुरु शिष्यः श्रुतिरतः
पदान्ते नाथान्तः सुविदितयशा उत्तम इति ।
विनेयस्तस्यैव क्षिति विततवेदान्तकिरणो
विवेको ऽयंनाथोऽखिलनिगमवेत्ता विजयते ॥८॥

महात्मासौ लोके व्यथित बहुपुण्यानि परितो
मराधुधानानि व्यरचि विजलेऽनेन विषये ।

प्रपावापीकूपारामरनिलयविद्यालयप्रकृति—
  धेरां धेनूर्द्दश्यां वितरयति लोकार्जितदः ॥९॥

श्रीमान् योगिशिरोमणिःकविवरो ज्ञानप्रदीपोज्वलः
  शिष्यश्चोत्तमनाथवेदविदुषो वेदान्त विद्यारवेः ।
योगि श्री नवलेशसद्गुरुगुरोः पौत्रो विवेकाभिधः
श्रौतस्मार्तविवेकमेप तनुते ध्वान्तापहं देहिनाम् ॥१०॥
(प्राचीन प्रशस्ति ग्रंथों से उद्घृत)

इन पद्यों में भगवान् आदिनाथ से लेकर वर्तमान श्री नवलनाथ पीठ के अधिष्ठाता तथा इस श्रौतस्मार्तविवेक मार्तण्ड ग्रन्थ के रचयिता स्वामी श्री विवेकनाथजी महाराज तक के योगेश्वरों का स्मरण है जो कि वेद शास्त्र एवं सनातन आर्यधर्म की रक्षा करने में सदा से तत्पर रहे हैं। अतः उनके नामों का यहां स्वल्प उल्लेख एवं स्मरण किया गया है।

सम्पादक

सम्पादकीय

आर्य जाति की सनातन मान्यताओं के विषय में फलाये जाने वाले भ्रान्ति जनक अन्धकारों को दूर करने के लिये एक तपस्वी के तपःपूत हृदयाकाश से भारतप्राङ्गण में जो यह श्रौतस्मार्तविवेक मार्तण्ड का उदय हुआ है यह हमारे लिए अत्यन्त हर्ष का विषय है। इसके संपादन करने का सुअवसर मुझको प्राप्त हुआ और ईश्वर की कृपा से यह ग्रन्थ पूर्ण एवं प्रकाशित हुआ है तो भी मैं अपने तुच्छ श्रम को सफल तभी मानूंगा जब इसको पढ़कर पाठकगण उसको कृतार्थ करेंगे।

श्रुति स्मृति प्रतिपादित अनेक विषयों पर समयानुकूल समन्वय के साथ इस ग्रन्थ से सनातन दीप्ति अनेक हृदयों में दीप्त होकर कलिमलाच्छन्न जगत में आलोक प्रदान करें इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए इस ग्रन्थ के लिखने एवं प्रकाशित करने में श्री स्वामी जी विवेकनाथ योगेश्वर महाराज ने जो प्रयास किया है उसके लिये ऐसा कौन भारतीय विद्वान होगा जो स्वामी जी का कृतज्ञ न होगा।

इस प्रकार के महात्मा पुरुष विरल ही देखने में आते हैं जो अपने देश समाज एवं पूर्व गौरव तथा वेद शास्त्रों के अपमान से खेद का अनुभव करते हैं। ऐसा अनुभव करने वाले महापुरुषों में भी इस प्रकार के स्वल्प ही विद्वान हैं जो उसका प्रतीकार करने के लिये

आचार्य कुन्द सविग त्याग करने में संलग्न होते हैं। श्री स्वामी जी महाराज इसी प्रकार के महापुरुषों में गिने जा सकते हैं। आपने इस ग्रन्थ में जो अनेक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है वह इसमें संदेह नहीं कि आर्य जगत की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति है। अपनी पवित्र प्राचीन संस्कृति पर किए जाने वाले कुटिलतापूर्ण प्रहार को व्यर्थ करने के लिए स्वामीजी का यह सत्प्रयास भविष्य के लिए भी एक ऐसा आदर्श रहेगा जिस आदर्श से प्रेरणा पाकर अन्य विद्वान भी इसके लक्ष्य की सिद्धि में सचेष्टता प्राप्त करते रहेंगे।

स्वार्थ के लिए कौन नहीं जीता है? किन्तु सार्थक जीवन वही माना जाता है जिससे अपने देश समाज एवं गौरवपूर्ण परम्परा की रक्षा होती है। प्रशंसनीय विद्वत्ता भी वही है जो अपनी एवं अन्य की भी अविद्या को दूर करने का प्रयास करती है। कर्तव्य उसको कहते हैं जो सबको सन्मार्ग की तरफ ले चले। अपनी अनुभूति से निकला हुआ तथा अपने जीवन पर परीक्षा किया हुआ उपदेश ही सच्चा उपदेश है। इन सब दृष्टियों से विचार करके मैं श्री स्वामी विवेकनाथजी में उक्त गुणों का समन्वय पाता हूं। उन गुणों को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए स्वामीजी से मैं प्रार्थना करता हूं कि आप इसी प्रकार अपनी पवित्र भावनाओं से भव्यजनों के उपकार में रत रहें।

स्वामीजी ने अनेक पवित्र ग्रन्थों का प्रकाशन किया है और कर रहे हैं। भविष्य में भी विवेक ग्रन्थमाला के रूप में बहुत से महत्व-

पूर्ण ग्रन्थ आपके द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले हैं। अपने ग्रन्थों के अतिरिक्त आप अन्य विद्वानों के भी शोधपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशन में सदा सहायता देते रहते हैं। दुर्गासप्तशती चरित्र के व्याख्यान पर इक्कीस सर्गों में पं लक्ष्मीचन्द्र मिश्र मोष्ट-व्याकरणाचार्य द्वारा रचित "शक्ति शंखनाद" महाकाव्य जो मुद्रित हुआ है वह एकमात्र आपकी ही अनुकम्पा का सुमधुर फल है।

इस श्रौतस्मार्तविवेक मार्तण्ड के विषय में जिन विद्वानों ने अपनी सम्मति देने की कृपा की है उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। अन्य विद्वानों से भी प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ को पढ़कर इसके विषय में अपनी सम्मति एवं सुझाव भेजने की कृपा करें ताकि इसका अगला संस्करण इससे भी अधिक सुन्दर हो सके। इसके सम्पादन में जो न्यूनता रह गई हो उसके लिए गुणैकपक्षपाती विद्वान "गच्छतः स्खलनं क्वापि" इस न्याय के अनुसार क्षमा करेंगे ऐसी आशा है।

अन्त में मैं पं० लक्ष्मीचन्द्रजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने स्वामीजी के भिन्न भिन्न विषयक लेखों को क्रमबद्ध करने में मुझको पूर्ण सहयोग दिया है। उन समस्त महानुभावों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया है।

वैशाख शुक्ला तृतीया विक्रमाब्द २०१५	विद्वज्जनचरणकमलचञ्चरीकः चण्डीप्रसादाचार्यः सम्पादकः

[लेखक-पं० लक्ष्मीचन्द्र मिश्र पोष्ट-व्याकरणाचार्य
संस्कृताध्यापक रामपुरिया कालेज बीकानेर
तथा अनुसंधानकर्ता-विवेक ग्रन्थमाला, बीकानेर]

भारतीं भारतीयानां देववाणीमुपास्महे

अर्थःसंस्पृश्य हृत्तन्त्रीं याभिव्यञ्जयते स्वरान् ।
व्यक्त वर्णपदां शुद्धां तां वंदे मानसस्थिताम् ॥१॥
वेदैरनादिविदितामुपवेदैः सुकौशलाम् ।
व्याकृतां शिक्षयाधीतां षडङ्ग श्रुतवैभवाम् ॥२॥
महाभारत विख्यातां रामायण पुरस्कृताम् ।
पुराणैरतिविस्तीर्णां मन्त्र तन्त्रैरुदीरिताम् ॥३॥
दर्शित ब्रह्म जिज्ञासां धर्मे व्यापृतदर्शनाम् ।
ध्यान योग महाविद्यां सख्याताव्यक्त चेतनाम् ॥४॥
निर्णीत गौतमन्यायां कृतकाणादकल्पनाम् ।
मानवीय विधानेषु सुधैर्मन्वादिभिः स्मृताम् ॥५॥
शैववैष्णवशाक्तानां नानागमनिषेविताम् ।
जैन बौद्ध मतुवानां पाठवेन चमत्कृताम् ॥६॥
संगृहीत महाकोशां निरुक्तच्छिन्न संशयाम् ।
छन्दः सूत्रैः समाबद्ध पद्यभवनभूषणाम् ॥७॥

प्रसन्नां कालिदासादौ बाणादौ च प्रसाधिताम् ।
गीतगोविन्द संगीतां सूत्रधार कृतादराम् ॥८॥
रेखांकबीज गणितां ग्रहच ज्ञानसंयुताम् ।
निदानौषध विज्ञाने स्वचिकित्सितमहादराम् ॥९॥
इह लोके तथान्यत्र चतुर्वर्ग फलान्विताम् ।
संदिशन्ती हितां नीतिं नयन्ती च विनीतताम् ॥१०॥
वारयन्तीमघः पातात् प्रेरयन्ती शिवां मतिम् ।
अर्पयन्ती परां विद्यां तर्पयन्ती जगन्मनः ॥११॥
भारत सर्वभाषाणां पुत्रभाव समुज्ज्वलाम् ।
भारती भारतीयानां देववाणीमुपास्महे ॥१२॥
कस्तां न पूजयेद् देवीं यस्याः संस्कृतसागरे ।
विद्यारत्नानि विद्यन्ते विभूतानि चतुर्दश ॥१३॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीति चतुष्टयीम् ।
धयन्तु सुधियो धन्याः सुरधेनुं सनातनीम् ॥१४॥
चतुर्दशानां विद्यानां स्थानं धर्मस्य चोज्ज्वलम् ।
विद्यते यत्र तां देवीं देववाणीं नमाम्यहम् ॥१५॥

पं० श्री लक्ष्मीचन्द्र मिश्र
पोष्ट-व्याकरणाचार्य काव्यतीर्थ

सत्यमेव जयते, नानृतम्

श्रौत स्मार्त विवेकमार्तण्ड

※ राष्ट्र - मङ्गलम् ※

ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो
धी महारथो जायतां दोग्ध्रीधेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धि-
ष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य जायतां निकामे निकामे
न्यो अभि वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योग क्षेमो नः
म् ॥१॥

कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गै-
स्तनूभिर्व्यशेमहि देव हितं यदायुः । स्वस्तिन इन्द्रो वृद्ध
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति न स्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ।
नो बृहस्पति र्दधातु ॥२॥

मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ।
विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं
तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु
॥३॥

ॐ सह नाववतु । सहनौ भुनक्तु । सहवीर्य करवावहै । तेजस्वि ना
धीतमस्तु माविद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥

वैदिक-राष्ट्रगीत का भावार्थ

हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मतेजधारी हों, क्षत्रिय बाण चलाने मे
दूरतक लक्ष्यवेध करने वाले शूरवीर एवं महारथी हों, प्रभूत दूध दे
वाली धेनु हों, भार कृषि आदि कार्यों में दृढ़ बैल हों, शीघ्रगामी घो
हों, स्त्रियां सौभाग्यवती पति-धर्मपरायणा हों, विजयी रथारोही ह
युवक सभ्य हों, यथासमय वृष्टि हो, वृक्ष लता एवं पौधों में पुष्प फ
अन्न परिपक्व हों, प्रत्येक वस्तु इस यज्ञशील राष्ट्र को प्राप्त हो ए
सुरक्षित रहे। यह वेद मन्त्र राष्ट्रगीत के रूप में यज्ञकर्म करने वाले
आर्यराष्ट्र की मंगलकामना करता है ॥१॥

हे देवगण ! हम यज्ञकर्मरत आर्य सदा कानों से भद्र उत्तम बातें
सुनें, आखों से भद्र दृश्य देखें, हमारे शरीर स्वस्थ हों, हम दीर्घायु
हों। दूरदर्शी इन्द्र हमारा कल्याण करे। अग्नि एवं सूर्य हमारा
कल्याण करे, आपत्ति दूर करने वाला गरुड़ हमारा कल्याण करे।
देवगुरु बृहस्पति हमें सद्बुद्धि प्रदान करता रहे ॥२॥

दिनाभिमानी मित्रदेव, वरुण, सूर्य इन्द्र, बृहस्पति, प्रभृति देव
एवं पराक्रम शील विष्णु भगवान हमारे कल्याणकारी हों।

मैं ब्रह्म को नमस्कार करता हूं, हे वायु मैं तुमको नमस्कार
ा हूँ. तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है, मैं तुमको ब्रह्म मानता हूं। मैं सत्य ऋत
ण करूं अतः हमारी और हमारे आचार्य की रक्षा कीजिये ॥३॥

हम मिलकर एक दूसरे की रक्षा करें, साथ में ही मिलकर भोग्य-
र्थ का उपभोग करें। मिलकर पराक्रम [श्रम] करें. हमारी अध्य-
प्राप्त विद्या एवं विज्ञान प्रभावशाली हों। हम परस्पर लड़ें नहीं,
विश्व में शान्ति हो ॥४॥

ग्रन्थोद्देश्यम्

श्रुतिस्मृतीनां पथि शाश्वते ये
दिग्भ्रांतिमन्तो भ्रमयन्ति लोकान्।
उदेति तेषां तिमिरापहारी
सनातनः कोऽपि विवेकभानुः ॥५॥

इस ग्रन्थ का उद्देश्य

अनेक दिग्भ्रान्त विचार वाले जो भी व्यक्ति श्रुतिस्मृति प्रति-
ित मार्ग सनातन सिद्धान्तों के विषय में भारतीय जनता को भ्रान्त
ते का अपने प्रचारों के द्वारा प्रयास किया करते हैं उनके द्वारा
ाये हुए अन्धकार को दूर करने के लिये यह प्राचीन श्रौतस्मार्त
ेकरूपी सूर्य उदय हो रहा है ॥५॥

ईश्वर से उत्पन्न सृष्टि

समस्त इस स्थूल एवं सूक्ष्म जगत का पिता एक सच्चिदानन्द परमेश्वर है उनके अनन्त रूप काल प्रभाव में कोटि कोटि ब्रह्मांड उनसे ही उत्पन्न होकर उन्हीं में स्थित रहते हैं और लीन हो जाते हैं। समस्त चतुर्विध प्राणी एवं चतुर्दश भुवनात्मक जगत् सन्निवेश भी इसी महाविराट का शरीर है। देश और काल क्रमशः माता और पिता हैं। काल एक अखण्ड होते हुवे भी उसके कला काष्ठादि रात्रि मास ऋतु वर्ष युग कल्प रूपी भेद कल्पित किये जाते हैं। उनकी भुक्ति के अनुसार उनके भिन्न भिन्न नाम बतलाये गये हैं। यह भूमि जो कमल पुष्प के आकृति की है यही ब्रह्मा का वह कमल है जिसकी चर्चा पुराणों में आती है ऐसा मार्कंडेय पुराण में स्पष्ट लिखा है।

देश और काल भगवती माया शक्ति जो कि अघटित घटना पटीयसी है उसी से नियन्त्रित हैं। यहां सृष्टि क्रम पर विचार किया जा रहा है। इस हमारे अनादि आर्यदेश का प्राचीन नाम जम्बू द्वीप है, इस देश में सृष्टि से लेकर अब तक का इतिहास वेदादि ग्रन्थों में छिपा पड़ा है। हमारी सनातन मान्यता के अनुसार सृष्टि ... इस प्रकार चला है।

सृष्टि क्रम

भगवान की योग माया के द्वारा विराट् जगत् की उत्पत्ति लीला इस प्रकार आरम्भ हुई इस विषय में महापुराण भागवत में लिखा गया है।

> भगवानेक आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः।
> आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥१॥
>
> स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट्।
> मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥२॥
>
> सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिःसदसदात्मिका।
> माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः। ३॥

रचना से पूर्व अखिल आत्माओं का अधिष्ठान भूत केवल एक पूर्ण परमात्मा ही थे। उस समय न कोई द्रष्टा था न दृश्य था, क्योंकि भगवान की इच्छा ही अकेले रहने की थी। पुनः वही भगवान् द्रष्टा होकर देखने लगे किन्तु उन्हें कोई दृश्य दिखाई नहीं पड़ा। उस समय भगवान् की सब शक्तियां सुप्त थीं। अतः उनको ऐसा भान हुआ कि मैं क्या अविद्यमान (असत् ... और दृश्य का अनुसंधान करने ... है।

... द्वारा भगवान ने विश्व ...

काल शक्ति से त्रिगुणमयी माया में क्षोभ होने पर चेतन प
मेश्वर ने उसमें पुरुष रूप से अपने चिदाभास रूप बीज को रख दिय
यही चिदाभास काल से प्रेरित अव्यक्त माया से एक होकर महत्
तत्वों सहित विराट् कहा जाता है। इस विषय में भगवान मनु
भी मानव धर्म शास्त्र में कहा है।

आसीदिदं तमोभूतम प्रज्ञात मलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥४॥
ततः स्वयंभूर्भगवान् अव्यक्तो व्यंजयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत् तमोनुदः ॥५॥
सोभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥६॥

इन श्लोकों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

" एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय "

इस श्रुति का भी यही तात्पर्य है।

ब्रह्मा की उत्पत्ति

चैतन्य पुरुष का अदर्शन अचेतना तथा अनर्थसंयोग से [illegible]
[illegible] का [illegible] अविद्याता हैं और [illegible]
[illegible] का विराट परमेश्वर सूक्ष्म रूप से [illegible]

में विद्यमान होते हुये बहुत समय तक वह स्वप्रथम रचित जल में विद्यमान रहा। सृष्टि के पूर्व में यह समस्त विराट् विश्व इस जल में मग्न रहा। भगवान विष्णु अपनी शेष शय्या पर योग-निद्रित हो रहे थे। सृष्टिकर्म से अवकाश लेकर आनन्द में मग्न थे। एक हजार वर्ष पर्यन्त जल में शयन करने के अनन्तर भगवान की काल-शक्ति ने जीवों के कर्मों की प्रवृत्ति के लिये उन्हें प्रेरित किया। अन्य शक्तियों के सुप्त होने पर भी काल शक्ति जागृत रहती है। काल शक्ति से प्रेरित होते ही भगवान के अन्तः स्थित जगत् तत्व रजोगुण से क्षुभित होकर सृष्टि रचना के निमित्त भगवान विष्णु के नाभि देश से बाहर निकला। कर्मशक्ति को जागृत करने वाले काल के द्वारा विष्णु नाभि से प्रकट हुआ कमल सहसा ऊपर उठा और जल को देदीप्यमान करने लगा। क्योंकि आन्तर्यामी रूप से भगवान् उसमें प्रविष्ट थे। उसी कमल में स्वयंभू पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुये।

इसी ब्रह्मा ने संसार की रचना की है, उत्पन्न होने पर ब्रह्मा उस कमल की कर्णिका पर मौन बैठे हुए थे और प्रलय के थपेड़े खा रहे थे। वह चारों तरफ आकाश में देखने लगे, इससे चारों दिशाओं में उनके चार मुख हो गये। [illegible]

और सृष्टि रचना में प्रवृत्त हुये । पश्चात् इन्हीं की संतान अत्रि वशिष्ठ अंगिरा मरीचि पुलस्त्य पुलह आदि दश मानस पुत्र महर्षि उत्पन्न हुये । उन से ही समस्त देव मानवादि उत्पन्न हुये जो कि वेदोक्त मार्ग से अपने अपने कर्म में प्रवृत्त होकर इस नश्वर जगत में रहकर अनश्वर लोक प्राप्त किये । यही—गीता में भी कहा गया है ।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाःप्रजाः ॥७॥

काल प्रमाण

समस्त जन्य का कालिक सम्बन्ध काल से रहता है अतः इसे भी जनक न होते हुए जनक कहा जाता है ।

जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः ॥८॥

इसका तात्पर्य भी यह है कि सब का आधार काल है क्योंकि काल निरवधि है । इसमें अनेक कल्प युग पुनः पुनः आते रहते हैं अतः सृष्टि प्रलय कालरूपी भगवान में आश्रित हैं । इसका भेद इस प्रकार है ।

विरंचि रचित सृष्टि में मानव की आयु "शतायुर्वैपुरुषः" इस श्रुति के अनुसार १०० वर्ष की बतलाई गई है । वर्ष का प्रमाण इस प्रकार है । मनुष्यों के रात और दिन में आठ प्रहर होते हैं । पन्द्रह

दिन का शुक्ल पक्ष १५ दिन का कृष्ण पक्ष मिलकर एक मास कहा जाता है। द्वादश मास मिलकर एक वर्ष बनता है, किन्तु इन्द्रादि देवों का यह केवल १ दिन रात होता है। एक वर्ष में छः ऋतु और दो अयन बीतते हैं। इन वर्षों की प्रवृत्ति सूर्य से मानी जाती है। मकरार्क से छः मास उत्तरायण कहा जाता है और कर्क की संक्रान्ति से छः मास दक्षिणायन होता है।

युग

सत्य युग, त्रेता, द्वापर एवं कलि ये चार युग अपनी सन्ध्या एवं संध्यांशों के सहित देवताओं के १२ हजार वर्ष तक रहते हैं। मनुष्यों के वर्ष के हिसाब से सत्ययुग १७ लाख २८ हजार, त्रेता १२ लाख ९६ हजार, द्वापर ८ लाख ६४ हजार, कलियुग ४ लाख ३२ हजार वर्ष का होता है। इन चारों युगों के वर्षों का योग करने से ४३ लाख २० हजार वर्ष होते हैं। इसी को एक हजार से गुणन करने पर ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इतने काल तक यह सृष्टि चलती रहती है। अनन्तर ब्रह्मा के दैनिक प्रलय में ब्रह्मलोक के नीचे महर्लोक पर्यन्त सृष्टि का लय हो जाता है। इस आशय को गीता में व्यक्त किया गया है—

सहस्रयुगपर्यन्त महर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रि युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्र विदो जनाः ॥६॥

इस ब्रह्मा के दिन के अनुसार ही उनके मास वर्ष होते हैं

इस प्रकार अपने वर्षों से ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष की मानी जाती है

सम्प्रति जो समय वर्तमान है वह ब्रह्मा का परार्ध कहा जा
है। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के ५० वर्ष व्यतीत हो
उत्तरार्ध ५१ वाँ वर्ष चल रहा है, और उसमें यह प्रथम मास के प्र
पक्ष का प्रथम दिवस दो प्रहर व्यतीत होकर तीसरे मुहूर्त में प्रवे
है। यह शतवर्षात्मक ब्रह्मा का समय एक महाकल्प कहा जाता है
इतने समय में एक ब्रह्मा समाप्त होता है और पुनः अपने [illegible]
स्वरूप सच्चिदानन्द रूप में लीन हो जाता है। इसके साथ
चतुर्दश भुवन रूपी ब्रह्माण्ड भी उसी परमेश्वर में लीन हो जाता
इसी को महाप्रलय कहते हैं।

आर्य प्रातः प्रतिदिन जो संकल्प पढ़ते हैं उससे उक्त समय
इस स्मरण करते रहते हैं। यह संकल्प इस प्रकार है—

श्रीमन्नारायण नाभिकमलोद्भूत सकल जगत् स्र
परार्धद्वय जीविनो ब्रह्मणः द्वितीये परार्धे एकदंचाशत्तमे वर्षे प्रथ
मासे प्रथम पक्षे प्रथम दिवसे अह्नो द्वितीये यामे तृतीये मु
रथन्तरादि द्वात्रिंशत् कल्पानां मध्ये अष्टमे श्वेतवाराह कल्पे
स्वायंभुवादि मन्वन्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे कृत
त्रेता द्वापर कलिसंज्ञकानां चतुर्णां युगानां मध्ये वर्तमाने अष्टावि
शतितमे कलियुगे तत्प्रथमे विभागे (पादे) श्रीमन्नृपति विक्रमार्क

श्रीमन्नृपशीलवाहनाद्वा यथासंख्यागमेन चान्द्र सावन सौर नाक्षत्रादि प्रकारेणागतानां प्रभवादि षष्टि संवत्सराणां मध्ये-ऽमुकनाम्नि संवत्सरेऽमुकमासे ऽमुकपक्षे ऽमुकतिथ्याममुक वासरे .... ।

यह संकल्प हमारा अनादि परम्परा से चला आ रहा है। प्रत्येक शुभ कर्म के पहले देशकाल स्मरण करने के लिये यह पढ़ा जाता है। इससे इस सृष्टि के आरम्भ होने का समय आर्यों को स्मरण रहा करता है। इस विषय में कोई शंका भी आर्य विद्वानों को उत्पन्न नहीं होती है। अपनी संस्कृति से जो अनभिज्ञ हैं उनके ही संदेह के निवृत्यर्थ यह संकल्प ज्यों का त्यों यहां दे दिया गया है।

मन्वन्तर एवं कल्प

ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु व्यतीत होते हैं और साथ ही १४ इन्द्र भी बदल जाते हैं। यह मनुष्यों की ७१ चतुर्युगी एक मनु का समय होता है। ब्रह्मा के वर्तमान दिन में यह सातवां मनु वैवस्वत का मन्वन्तर है। एक महा कल्प के अन्दर ३२ कल्प होते हैं जिनका नाम भगवान के अवतारों के नाम से कहे जाते हैं। उन कल्पों में यह आठवां कल्प श्वेत वाराह कल्प के नाम से कहा जाता है, इस कल्प में यह युग २८ वां कलियुग है। उसका यह अभी प्रथम ही चरण व्यतीत हो रहा है। महाभारत युद्ध काल से यह युग प्रवृत्त

हुआ है इसके व्यास तक ५ हजार ६० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ब्र
के प्रथम परार्ध को पद्म कल्प कहा जाता है और यह परार्ध वा
कल्प है।

इस सृष्टि प्रवाह में प्रत्येक कल्प में सृष्टि का आंशिक प्र
होता रहता है इसको अयान्तर प्रलय कहते हैं। भूरादि तिन
लोक जब जल में मग्न हो जाते हैं, तब उसे ब्रह्मा का दैनिक प्र
कहते हैं। आज तक इस सृष्टि को हुये कितने दिन हुये, कितने व
हुये इस विषय पर उक्त रीति से विचार किया जाय तो ब्रह्मा
पूर्वार्ध की ही संख्या १५ नील ५५ खरब २० अरब १६ करोड़ व
व्यतीत हो चुके हैं और २ अरब ५४ करोड़ वर्ष उत्तरार्ध के मे
व्यतीत हो चुके हैं। अभी ब्रह्मा का १ बजकर ३ मिनट उत्तरा
में हुआ है।

इस संख्या को हम सदा प्रतिदिन संकल्प पढ़कर स्मरण करते
आ रहे हैं। अतः इस विषय में सन्देह नहीं है। ब्रह्मा की पूर्ण
आयु का मान ३१ नील १० खरब ४० अरब ३२ करोड़ है।

अर्वाचीन विकासवाद का खण्डन

कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि यह संसार क्रमशः विक
सित हुआ है। पहले सरीसृप जीवों का ही बाहुल्य था, जंगली
बन्दरों से मानव शरीर का निर्माण हुआ है। धीरे धीरे पूंछ छोटी
होती हुई नष्ट हो गई है।

इसकी सत्यता पर सहसा आस्तिक जनों को विश्वास नहीं होता है। यदि वानर शरीर से मानव शरीर निर्मित हो सकता है तो यह परम्परा रुक नहीं सकती थी। आज भी कोटि कोटि बन्दर विद्यमान हैं परन्तु उनमें से कोई मानव रूप में परिणत नहीं हो रहा है। रह गई पूंछ भड़ने की बात सो यदि पूंछ भड़ जाती है तो कभी नाखून भी भड़ सकते हैं। अतः नर एवं वानर दोनों पृथक् पृथक् सृष्टि कर्ता के द्वारा निर्मित किये गये हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस विकासवाद को अब आधुनिक वैज्ञानिक भी निर्मूल समझने लगे हैं।

ईश्वर में अनन्त शक्ति हैं, उनसे अनन्त प्रकार के भिन्न भिन्न विश्व के उत्पन्न होने में कोई आश्चर्य नहीं है।

" न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।
"विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता,"
"धाता भूमिं जनयन् देव एकः।
प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽन्तर जायमानो बहुधा विजायते।
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः॥

इत्यादि श्रुतियों के अवलोकन से विश्व का कर्ता परमेश्वर ही सिद्ध होता है।

अनुमान से ईश्वर सिद्धि

यत्र यत् कार्यम् तत्र तत्र कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्।
एवं क्षित्यङ्कुरादिकं कार्यं कर्तृजन्यं तत्कर्ता च परमेश्वर एव॥

प्रत्येक कार्य घट पट का कोई कर्ता होता है। बिना कर्ता के
कार्य उत्पन्न नहीं होता है। पृथ्वी वृक्षादि कार्य को उत्पन्न करने वा
कोई अन्य नहीं हो सकता अतः उसका कर्ता अचिन्त्य शक्ति परमे
ही है। वेद प्रमाणित इस तर्क को न मानना केवल हठ ही कहा
सकता है।

वस्तुतः न तो हमारे पूर्वज आर्य बन्दर थे न वनमानुष।
हमारे कोई पूंछ ही थी जो घिसकर छोटी हो गई या झड़ गई।
यदि ईश्वर प्रदत्त हमारे पास पूंछ होती तो हम उसको अपनी चोटी
की तरह सुरक्षित रखते। दूसरा प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि
वानरों ने ही क्या पाप किया था जो उन्हीं की पूंछ झड़ गई। कुत्ते
गीदड़ आदि पूंछधारियों की पूंछ क्यों नहीं गिरी? यदि कपिरोम
से रहित होकर चिकना सा मानव शरीर बना तो सुन्दर सिर के केश
भी समाप्त क्यों न हो गये?

'कारण गुणाः कार्यमनुमवन्ति'

इस नियम के अनुसार कुछ न कुछ तो मनुष्य में बन्दरों की
पूंछ होनी ही चाहिये थी परन्तु ऐसा नहीं होने से वानरों से मानव

शरीर बना है यह नितान्त भ्रान्त धारणा विदित होती है। झड़ने की परम्परा यदि मान ली जाय तो हमारे अन्य नाक इत्यादि अवयवों के भी झड़ जाने से समुद्र में शंखों की तरह हम लुढ़कते ही रहते। इसलिये प्रार्थना करते हैं कि त्रिलोकीनाथ भगवान इस पवित्र भारतवर्ष में अंग प्रत्यंग पतन की परम्परा को दूर ही रक्खें और हम उस पशुत्व को न ग्रहण करें, जिसमें पति पत्नी श्वश्रू श्वसुर आदि के प्रति पवित्र सम्बन्ध एवं नियम ही विच्छिन्न हो जायँ। जैसा कि सर्वत्र बन्दरों में देखा जाता है।

हमें इन भ्रान्त धारणाओं से सावधान रहना चाहिये। आज ऐसा युग देखने में आ रहा है कि हमारे अनेक भारतीय आर्य भी अनार्य धारणाओं के अनुयायी ही केवल नहीं हो रहे हैं अपितु अपने देश के पवित्र सत्य-सिद्धान्तों पर कुठाराघात करने में भी कोई कसर नहीं रख रहे हैं। यदि हम इनकी बातों में आ जाते हैं तो इससे हमारा, हमारे समाज का, हमारे राष्ट्र का अकल्याण अवश्यम्भावी है। आज कल यह भी देखा जाता है कि अपनी प्राचीन परम्परा के ज्ञान से शून्य नव शिक्षितों के सामने कोई भी व्यक्ति अपने व्याख्यान में थोड़ी सी चमत्कारपूर्ण बातें कहकर उनको धोखे में डाल देता है। जैसे मैं अमुक समय में इंगलैण्ड में था 'अमेरिका में मैंने देखा कि" "श्री बापूजी कहा करते थे" यह हमारे वेदों में लिखा है, इत्यादि मनो कल्पित शीर्षक देकर जैसा भी चाहते हैं कह देते हैं। इनमें कई [illegible] चारी के बनावटी रूप में भी आते हैं। कोई

बनावटी संन्यासी का रूप धारण किए हुये दिखाई देते हैं। स्वार्थपूर्ति की भावना से सुधारों का नारा बुलन्द करते हैं और पर कार की आड़ में निजोपकार करते हैं। आजकल ऐसे महा पं की भी न्यूनता नहीं हैं जो अपने जीवन में अनेक रूप बदल अपने निष्प्रमाण एवं श्रुतिस्मृति विरुद्ध लेखों द्वारा आर्य जगत भ्रान्त करने में कटिबद्ध हैं। इनसे सावधान रहने के लिये इन चार पंक्तियों को मैंने प्रकरण वश यहां लिख दिया है। पुनः सृष्टि के अनन्तर भारतवर्ष के प्राचीन स्वरूप पर ही विचार प्र करते हैं।

हमारे देश का अभ्युत्थान एवं सर्वतो मुखी उन्नति जिन पूर्व के समय हुई थी उनके एक मात्र आराध्य वेद भगवान के विषय विचार किया जा रहा है। ब्रह्मा ने वेदों के अनुसार सृष्टि रचना "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इत्यादि श्रुति इस प्रमाणभूत है। कुछ लोग वेद को आधुनिक ग्रन्थ मानकर कहने लगे हैं। कतिपय भारतीय भी जिनका वेद के विषय में पूर्णज्ञान नहीं है वे भी अपना निर्णय गला फाड़ फाड़कर देने में संकोच नहीं करते हैं। अतः हम इस विषय में भारतीय सनातन सिद्धान्तानुसा वादों को आर्य जनता के सामने रखना चाहते हैं। जैमिनि आदि कर्म सिद्धांतवादी एवं शंकर आदि ब्रह्म सिद्धांतवादी तत्वदर्शी विद्वानों ने वेद को अपौरुषेय ही माना है। जो लोग संप्रति इस सिद्धान्त को धिक्कार देते हैं उनकी धिक्कार कल्पना को शुद्ध करने के लिये

हमारे पास कोई शब्द नहीं है और न तो किसी विद्वान को ऐसा शोभा ही देता है। शंकर एवं जैमिनि व्यास एवं मनु-प्रभृति भारतीय मनीषियों में जितनी बौद्धिक सम्पत्ति थी उसका शतांश भी आज के राहुल जैसे विद्वानों में नहीं है तब भी दम्भवश वेद को अपौरुषेय मानने वालों का उपहास करते हैं। इस प्रकार का विचार करने वाला स्वयं उपहासपद है या नहीं इसका निर्णय हम विद्वानों पर छोड़ते हैं।

वेदोऽपौरुषेयः

यदि वेद का कोई मनुष्य कर्ता होता तो वह आर्यों की श्रद्धा का पात्र अवश्य होता। हम आर्य इतने कृतघ्न नहीं हैं कि अपने वेद कर्ता को भूल जाते। जब हम अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तक गुरुओं को भी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और उनके त्याग तपोमय पवित्र जीवन का आदर करते हैं तो यह कैसे हो सकता था कि हम उस महान् गुरु को भूल जाते जो वेद जैसे ग्रन्थ का निर्माता होता। जो कोई आस्तिक जन ईश्वर को वेद का कर्ता मानते हैं, उनका तात्पर्य भी यह है कि ईश्वर अपने श्वास रूपी वेद को सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकट करता है।

तस्य निःश्वसितं वेदाः

वेद ईश्वर का श्वास है। अर्थात् जिस प्रकार ईश्वर अनादि अनन्त स्थायी है उसी प्रकार उसके श्वासरूप वेद भी सदा

जाती है। प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में विलुप्त वेद को पुनः प्र
कराने के कारण ईश्वर उसका कर्ता कहा जाता है। वेद के मन्त्रों
श्रुति भी इसीलिये कहते है कि यह गुरु परम्परा से अनादि का
सुनी जाती आ रही है। भारतीय आर्य सनातन मान्यताओं
आधार यही एक मात्र वेद है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीलेन तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनां आत्मनस्तुष्टिरेव च ॥१०॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

इत्यादि प्रमाणों से स्मृति ग्रन्थ और पुराण भी केवल वेद
सिद्धान्त का ही पोषण करते हैं। स्मृतियों के विधान एवं पुराणों
प्रतिपादित धर्म वेद से ही अनुप्रमाणित हैं जिस स्मृति वाक्य के वि
में संप्रति कई वेद मन्त्र न उपलब्ध होता हो उसका अनुमान क
लेना चाहिए। सदाचार भी सदा से हमारा पथप्रदर्शक रहा है
राम आदि नरेश्वर एवं वसिष्ठादि महर्षियों जैसे ज्ञानी जनों ने जे
आचरण किए हैं यदि उस आचरण में प्रमाण कोई वेद मन्त्र
मिलता हो तो उस सदाचार से तन्मूल स्मृति एवं श्रुति का भी अनु
मान कर लेना चाहिये। महापुरुषों के आचरण निर्मूल नहीं हो
सकते। उनके सदाचार सिद्धान्त को बतलाने वाला स्मृति श्रुति वाक्य
अवश्य रहा होगा यदि वह सम्प्रति नहीं उपलब्ध होता हो तो समझ
लेना चाहिए कि बहुत से ग्रन्थों के लुप्त हो जाने से आज वे उपलब्ध
नहीं हो रहे हैं।

श्रुति स्मृति सदाचारानुकूल सनातन संस्कृति के विरुद्ध कहीं पुराणादि में कोई वाक्य या उपाख्यान मिले तो उनको किसी के द्वारा प्रक्षिप्त समझ लेना चाहिए क्योंकि सनातन संस्कृति के अक्षुण्ण अपरिवर्तनीय प्रवाह में उनका कोई स्थान नहीं है। जैसे महापवित्र गंगा के प्रवाह में कहीं कोई कूड़ा कचरा आ जाता है तो वहां उसकी कोई गिनती नहीं होती।

अनेकों शताब्दी भारत परतन्त्र रहा। लाखों की संख्या में हमारे ग्रन्थ आततायियों ने जला डाले, किन्तु हमारी संस्कृति का प्रवाह अक्षुण्ण रहा है। जो बात वेदों में है वही स्मृतियों में और जो स्मृतियों में है वही पुराणों में है। जो पुराणों में है वही सन्तों की वाणियों में है यहाँ तक कि भारतीय पामर ग्रामीण भी पूर्ण विद्वान है। वह ईश्वर और पुनर्जन्म को अच्छी तरह जानता और मानता है।

वेद अनादि और अपौरुषेय हैं। जितनी प्राचीन यह सृष्टि है उससे भी अधिक प्राचीन वेद हैं। न जाने सृष्टियाँ कितनी बार उत्पन्न और विलीन होती रहती है, किन्तु परमेश्वर और वेद सदा ही स्थायी रहते हैं।

अब जरा देखिये राहुल जी क्या कहते हैं

दर्शन दिग्दर्शन पृष्ठ ३८० से ३८२ तक

[आर्यों के भारत में आने से पूर्व सिन्धुपत्यका में असीरिया की समसामयिक एक सभ्य जाति रहती थी।

आर्यों ने सिन्धु उपत्यका के नागरिकों को परास्त कर वहां अप... अनुमान १८०० ई० पूर्व के आस पास जमाया ......।

आर्यों का प्राचीन साहित्य वेद जैमिनि (३०० ई०) के अनुसार मंत्र एवं ब्राह्मण दो भागों में विभक्त है ......।

वेदों में सबसे पुरानी ऋग्वेद मन्त्र संहिता है। ऋग्वेद के मंत्रक ऋषियों में सबसे पुराने विश्वामित्र, वशिष्ठ भारद्वाज, गौतम, अत्रि आदि हैं। इनमें कितने ही विश्वामित्र वशिष्ठ की भांति हैं, (सम सामयिक परस्पर) और कुछ में एक दो पीढ़ियों का अन्तर है। अंगिरा के पौत्र तथा बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज का समय १५०० ई० पूर्व है। भरद्वाज उत्तर पाञ्चाल (वर्तमान रुहेल खण्ड) के राजा दिवोदास के पुरोहित थे। विश्वामित्र दक्षिण पाञ्चाल (आगरा) से सम्बद्ध थे। वशिष्ठ का सम्बन्ध कुरु (मेरठ और अम्बाला कमिश्नरी) राज्य के पुरोहित थे। सारा ऋग्वेद छ सात पीढ़ियों की कृति है। (दर्शन दिग्दर्शन पृष्ठ ३८३) भरद्वाज का काल मैंने १५०० ई० पूर्व दिखलाया है। और पीढ़ियों का २० वर्ष का औसत लेने पर बृहस्पति ने (१५०० ई० पू०) से (१४२० ई० पू०) के अन्दर ही अपनी रचनायें कीं। ऋषियों की परम्पराओं पर नजर करने पर हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि ऋग्वेद का सबसे बड़ा भाग इसी समय बना है]

राहुल की इन पंक्तियों को पढ़कर साधारण पाठक इस भ्रम में पड़ सकते हैं कि वेद की उत्पत्ति ईसा के पूर्व १५०० वर्ष के अन्दर ही है और आर्य बाहर से भारत में आये हैं। मैं इस विषय में इसके

द्व सनातनस्तय आर्य विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ—

वस्तुतः वेदों में आये हुए नामों के आधार पर वेदों के समय का रिण करने का यह दुष्प्रयास किया गया है। वेदों में उल्लिखित जिन राजाओं एवं ऋषियों के नामों के आधार पर उक्त पंक्तियों द के समय का निर्धारण महापंडित जी ने किया है वे ऋषि और वेद मंत्रों के द्रष्टा बहुत प्राचीन हैं और भी जितने नाम वेद ाये हैं वे किसी प्राचीन या आधुनिक समय के साथ कभी जोड़े ा सकते चाहे उनका नाम संहिता में आया हो अथवा पनि में। वे सब बहुत प्राचीन हैं। उनको किसी सन्निकट सामयिक यान में आये हुए नामों से संबन्द्ध करना केवल भ्रम है।

अंगिरा ब्रह्मा के पुत्र हैं एवं बृहस्पति अंगिरा के पुत्र हैं। उनको ४ सौ पूर्व में दिखलाना अज्ञान ही कहा जा सकता है। वेद में त्र है जिसमें शतनीक का नामोल्लेख है।

वस्मन् दाचायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।

इस वेद मंत्र में आए हुए शतानीक राजा को यदि पांडव वंशीय म्बीनरेश उदयन का पितामह शतानीक मान लें तो वेद का समय व कालीन महाभारत के बाद का ही मानना पड़ेगा अतः वेद के निर्धारण करने में आधुनिक ऐतिहासिक राजाओं के नाम और सिक ऋषियों के नाम पर्याप्त नहीं है न तो यह कोई शास्त्रीय ही है। यह तरीका केवल एकमात्र भारतीय पवित्र ग्रन्थों की

पवित्रता को नष्ट करने की भावना रखने वाले पाश्चात्यों का अनुकरण मात्र है।

इस प्रकार वेदों में तो अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं और भविष्य में भी किसी आधुनिक नाम के साथ संबद्ध करने का मिथ्या प्रयास भी कोई कर सकता है अतः यह समय निर्धारण प्रकार अशास्त्रीय होने के कारण नितान्त निर्मूल है। इसको वेदों का समय सूचक मानना असंगत है।

श्रुति स्वयं वेद को इश्वर से प्रकट होना बतलाती है जैसे—

"या ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति वस्मै"

"अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः"

इसमें किसी को यहां शंका हो सकती है कि वेद के विषय में वेद को ही प्रमाण देना आत्माश्रय दोष है अतः वेद स्वयं अपने विषय में प्रमाण कैसे हो सकता है ?

इसका उत्तर यह है कि सर्वत्र आत्माश्रय दोष मानना अयुक्त है। वेद स्वतः प्रमाण है। जो स्वतः प्रमाण होता है उसके लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशक है उसको प्रकाशित करने के लिए किसी प्रकाशान्तर की आवश्यकता नहीं होती। जैसे सूर्य से ही अन्य पदार्थ प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार वेद से ही सारे प्रमाण प्रमाणित माने जाते हैं अतः उसको प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं है।

वास्तव में अनादि ईश्वर के श्वास रूप वेद प्रत्येक कल्प में इनकी कृपा से ब्रह्मा एवं महर्षियों के हृदय में स्फुरित होता है। यह किसी कल्प कल्पान्तर में बदलता नहीं है। इसमें हम प्रमाण वेदों और उसके नित्य शब्दों को ही मानते हैं और यही हमारे व्यास आदि त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ महर्षियों का मत है। हमारे सनातन धर्म में परंपरा से यही माना जा रहा है कि वेद विरुद्ध वचन शिव और ब्रह्मा के ही क्यों न हों माने नहीं जा सकते। तथा वेद के अनुसार चाहे साधारण से साधारण मनुष्य का वचन हो वह सदा माननीय होता है। इस प्रकार वेद अनादि एवं अपौरुषेय हैं यही हमारा सनातन सिद्धान्त है। इसी के आधार पर हमारे समस्त सामाजिक एवं धार्मिक पवित्र ग्रन्थ लिखे गए हैं। वैदिक सिद्धान्तों पर आक्षेप करने वालों की विचारधारा एक दूषित मनोवृत्ति का ही परिणाम है।

आज के अधिकांश लेखक वेदों को प्रमाण न मानकर केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं अतः भारतीय प्राचीन आचार्यों एवं ऋषियों के द्वारा तत्व निर्णय के लिये माने हुए इन छः प्रमाणों का कुछ सूक्ष्म रूप से यहां दिग्दर्शन कराया जा रहा है जिनके बल पर हमारी संस्कृति सदा से सबल एवं प्रकाश पूर्ण है। इन प्रमाणों के द्वारा सारे भ्रम दूर हो जाते हैं।

षट् प्रमाणों से प्रमेय की सिद्धि

"अहं ब्रह्मास्मि" इस श्रुति से अज्ञान और उसके कार्य की

8-20 ८

निवृत्ति होकर के परमानन्द स्वरूप की प्राप्ति होती है यही वेदान्त सिद्धान्त है। यहां जिज्ञासा यह होती है कि वृत्ति किसको कहते हैं? वृत्ति का कारण कौन है? और इसका प्रयोजन क्या है?

इसका उत्तर यह है कि विषय का प्रकाशक जो अन्तःकरण और अज्ञान का परिणाम उसको वृत्ति कहते हैं। यद्यपि कोप सुख आदि अंतःकरण के परिणाम तथा आकाश आदि भी अज्ञान के ही परिणाम हैं किन्तु इनसे विषय का प्रकाश नहीं होता है।

वृत्ति दो प्रकार की होती है— प्रमा और अप्रमा। प्रमाजन्य अबाधित अर्थ को विषय करने वाले यथार्थ अनुभव को प्रमा कहते हैं। प्रमा से भिन्न ज्ञान को अप्रमा कहते हैं। यथार्थ अनुभव रूप प्रमा के छ भेद हैं किन्तु ईश्वरज्ञान और सुख दुःख ज्ञान को मिलाकर के आठ भेद होते हैं।

प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्दी, अर्थापत्ति, अभाव इन छ प्रमाणों से जन्य यथार्थ ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष आदि षट् ज्ञान और सुख दुःख का प्रत्यक्ष ज्ञान जीवाश्रित प्रमा है। जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान सकल पदार्थों को विषय करने वाला माया की वृत्ति रूप ज्ञान है वह ईश्वराश्रित प्रमा है। यह सब प्रत्यक्ष रूप है। चाक्षुष आदि छ और मानस तथा ईश्वरप्रत्यक्ष मिल कर सब प्रमा के आठ भेद होते हैं।

अविद्या का परिणाम अप्रमा (भ्रमज्ञान) का उपादान कारण अविद्या है और निमित्त कारण सजातीय वस्तु के ज्ञान जन्य संस्कार,

प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयदोष और अधिष्ठान का सामान्य ज्ञान तथा तिमिरादिक हैं।

षट् प्रमाण—

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि इनको षट् प्रमाण कहते हैं।

१—प्रत्यक्ष प्रमा का करण प्रत्यक्ष प्रमाण है। २—अनुमिति प्रमा का जो करण है वह अनुमान प्रमाण है। ३—शाब्दी प्रमा का करण शब्द प्रमाण है। ४—उपमिति प्रमा का करण उपमान प्रमाण है। ५—अर्थापत्ति प्रमा का करण अर्थापत्ति प्रमाण है। ६—अभाव प्रमा के करण को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं। इन प्रमाणों में कौन किस प्रमाण को मानता है इसका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

क—चार्वाक-केवल प्रत्यक्ष एक ही प्रमाण मानता है।

ख—कणाद-एवं सुगतमत प्रत्यक्ष एवं अनुमान दो प्रमाण मानते हैं।

ग—सांख्यकर्ता-कपिल तीन प्रमाण मानते हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द

घ—न्याय के कर्ता-गोतम उपमान सहित चार प्रमाण मानते हैं।

ङ—मीमांसक एकदेशि भट्ट का शिष्य प्रभाकर उक्त चार और अर्थापत्ति पांच प्रमाण मानता है।

च—मीमांसक भट्ट एवं वेदान्त छ प्रमाण मानते हैं।

अज्ञात के ज्ञापक को प्रमाण कहते हैं। व्यापार रहित असाधारण कारण को प्रमा का करण प्रमाण कहते हैं। व्यापार रहित कहने का

कारण यह है कि जहां व्यापार है तो भी व्यापार वाला व्यापार से भिन्न ही है। और जहां व्यापार नहीं है वहां तो शंका ही नहीं बनती। यह मैंने वेदान्त रीति के अनुसार लक्षण किया है।

न्याय में चार ही प्रमाण माने हैं और वह भी व्यापार सहित माने हैं उनके मत में करण का लक्षण यह है—

व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम् ।

वेदान्त में प्रत्यक्ष अनुमान शब्द इनमें व्यापार मानते हैं किन्तु उपमान अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि में नहीं मानते। अतः उक्त व्यापार भिन्नत्व लक्षण का षट् प्रमाण में अन्वय है।

१—प्रत्यक्ष प्रमा के छ हेतु हैं- नेत्र आदि पांच ज्ञान इन्द्रिय तथा मन। नेत्र आदि इन्द्रियों का अपने अपने विषय के साथ संबन्ध होने से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान भी दो प्रकार का है- प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष, अभिज्ञा प्रत्यक्ष। देखी हुई वस्तु को पुनः देखना प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष है और पहले अज्ञात वस्तु को देखना अभिज्ञा प्रत्यक्ष है। अभिज्ञा दो प्रकार की है- अन्तर और बाह्य। अन्तर भी दो प्रकार की है- आत्मगोचर और अनात्मगोचर। अनात्मगोचर के अनेक भेद हैं। आत्मगोचर दो प्रकार की है- शुद्धात्मगोचर और विशिष्टात्मगोचर। शुद्धात्म गोचर भी दो प्रकार की है- ब्रह्मगोचर और अब्रह्मगोचर। अवान्तर वाक्य जन्य अब्रह्मगोचर तथा अहं ब्रह्मास्मि आदिक महावाक्य जन्य

प्रसे अभिन्न आत्मा को विषय करने वाली प्रत्यक्षगोचर प्रत्यक्ष प्रमा है।

२ — अनुमितिप्रमा-लिंगज्ञान जन्य जो ज्ञान है उसे अनुमिति
ना कहते हैं जैसे पर्वत में धूम का प्रत्यक्ष ज्ञान होकर अग्नि का ज्ञान
ता है। यहां धूम के प्रत्यक्ष ज्ञान को लिंगज्ञान कहते हैं। उससे
ति में जो अग्निका ज्ञान उत्पन्न होता है वह अनुमिति है जिसको
य कहते हैं। धूम ज्ञान को लिंग कहते हैं। व्याप्य के ज्ञान से
पक का ज्ञान होता है इसलिए व्याप्य को लिंग कहते हैं। व्यापक
साध्य यानी व्याप्ति वाले को व्याप्य और व्याप्ति के निरूपक को
पक कहते हैं। अभिन्नाभाव रूप संबंध को व्याप्ति कहते हैं जैसे
में अग्निका अभिन्नाभाव रूप संबन्ध है। वही धूम में अग्नि की
प्ति है। अतः धूम अग्नि का व्याप्य है। इस व्याप्ति रूप संबन्ध का
रूपक अग्नि है। जिसके बिना जो नहीं होता है उसका उसमें
भिन्नाभाव रूप सम्बन्ध होता है।

जैसे अग्नि बिना धूम नहीं होता अतः अग्नि का अभिन्नाभाव रूप
बन्ध धूम में है। और अग्नि में धूम का नहीं। क्योंकि अग्नि तो तप्त
द आदिक में धूम बिना रह सकती है। अतः धूम का अग्नि व्याप्य
है। किन्तु अग्नि का व्याप्य धूम है। इस प्रकार पर्वत में धूम को
करके जो अग्नि का ज्ञान होता है सो धूम ज्ञान को तो अनुमान
ण कहते हैं उससे जन्य जो अग्नि का ज्ञान है वह अनुमिति प्रमा
और धूम को देख करके जो पूर्व अनुभूत अग्नि की स्मृति है वह
पार है। इसको स्वार्थ अनुमिति कहते हैं।

और जहां दो का विचार हो वहां अग्नि के निश्चय वाला पुरु
अपने प्रतिवादी की शंका को उदाहरण पूर्वक निवृत्त करता है उसे
परार्थ अनुमिति कहते हैं। यह उदाहरण यह है—

पर्वत अग्निवाला है क्योंकि धूमवाला होने से। जो जो धूमवाला
होता है सो सो अग्निवाला होता है जैसे भोजनालय। यहां पर्वत का
ज्ञान पक्ष है धूम का ज्ञान हेतु है अग्नि साध्य है महानस उदाहरण है।

——अनुमान की वेदान्त विषयक उपयोगिता——

जीवो ब्रह्माभिन्नः। चैतन्यत्वात्। यत्र यत्र चैतन्यत्वम् तत्र तत्र
ब्रह्माभेदः। यथा ब्रह्मणि।

यहां जीव पक्ष है और ब्रह्माभेद साध्य है। चैतन्यत्व हेतु है।
सगुण ब्रह्म उदाहरण है।

३— उपमिति प्रमा- सादृश्य ज्ञानजन्य ज्ञान उपमिति है। जैसे
गौ के सदृश गवय का ज्ञान उपमान प्रमाण है और गवय के सदृश गौ
का ज्ञान उपमिति प्रमा है। जिज्ञासु के अनुकूल उपमिति प्रमा-आकाश
में आत्मा का सदृशज्ञान उपमान प्रमाण है। और आत्मा में आकाश
सदृश ज्ञान उपमिति प्रमा है।

४— शाब्दी प्रमा- शाब्दी प्रमा के करण को शब्द प्रमाण कहते
हैं। यह शाब्दी प्रमा दो प्रकार की है- व्यावहारिक और पारमार्थिक।
व्यावहारिक शाब्दी प्रमा भी दो प्रकार की है- लौकिक वाक्य जन्य
तथा वैदिक वाक्य जन्य। "नीलोघटः" इत्यादि लौकिक वाक्य है।
वज्रहस्तः पुरन्दरः इत्यादिक वैदिक वाक्य है। वैदिक वाक्य दो प्रकार

के हैं- व्यावहारिक अर्थ के बोधक और पारमार्थिक तत्व के बोधक। ब्रह्म से भिन्न सभी व्यावहारिक अर्थ हैं। परमार्थतत्व ब्रह्म है। ब्रह्म-बोधक वाक्य भी दो प्रकार के हैं। तत् पदार्थक या त्वं पदार्थ के स्वरूप बोधक अवान्तर वाक्य हैं जैसे- "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह वाक्य तत् पदार्थ का बोधक है। "य एष हृदयान्तर्ज्योतिः पुरुष" यह वाक्य त्वं पदार्थ के स्वरूप का बोधक है। तत् पदार्थ और त्वं पदार्थ के अभेद के बोधक "तत्त्वमसि" आदि महावाक्य हैं।

शब्द की वृत्ति के भेद दो प्रकार के हैं शक्ति और लक्षणा। शक्ति वृत्ति का निरूपण- जिस अर्थ में जिस पद की वृत्ति हो उस अर्थ की उस पद से प्रतीति होती है पद का अपने अर्थ के साथ वाच्य-वाचक रूप से सम्बन्ध को वृत्ति कहते हैं। पद में अपने अर्थ को जनाने की सामर्थ्य को शक्ति कहते हैं शक्ति वृत्ति का जो विषय है उसको शक्यार्थ या वाच्यार्थ भी कहते हैं। जहां शक्य अर्थ से अर्थ की सिद्धि नहीं संभव होती वहां लक्षणा वृत्ति करनी पड़ती है- जैसे— "यन् मनसा न मनुते" जिस ब्रह्म को मन से भी लोग नहीं जानते हैं इत्यादिक श्रुति में जिस प्रकार मन की विषयता का निषेध किया है उसी प्रकार "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" यहां जिस ब्रह्म में मन सहित वाणी भी न प्राप्त हो करके लौट आती है" इत्यादिक श्रुति से शब्द की विषयता का भी निषेध किया है इस कारण से महावाक्यों को ब्रह्मप्रमा की कारणता कहना विरोध है तथापि शब्द में ब्रह्मज्ञान की कारणता नहीं है ऐसा इसका तात्पर्य नहीं है। यदि ऐसा तात्पर्य

हो तो 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" मैं तुमसे उस उपनिषद्गम्य पुरुष को पूछता हूँ इस श्रुति में ब्रह्म को उपनिषद् वेद्य कहना असंगत हो जायगा, अतः शब्दकी शक्ति वृत्ति से ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता। बल्कि शब्द की लक्षणा वृत्ति से ब्रह्मगोचर ज्ञान होता है। इसी आशय को लेकर शब्द की शक्ति वृत्ति से ब्रह्मज्ञान की कारणता का निषेध किया गया। शब्द की लक्षणा वृत्ति से शब्द ब्रह्मज्ञान का कारण होता है इसी आशय से श्रुति कहती है "तं त्वौपनिषदं) तुमसे उस उपनिषद् गम्य ब्रह्म को पूछता हूँ। लक्षणा वृत्ति से ब्रह्मज्ञान होने के कारण ही उसका औपनिषदत्व संभव है। लक्षणा वृत्ति जन्य ज्ञान में भी ब्रह्म चिदाभास रूप फल का विषय नहीं है किन्तु आवरण भंग मात्र वृत्ति की ही विषयता ब्रह्म में है। इस प्रकार महावाक्यों को ब्रह्मप्रमा का कारण कहने में कोई विरोध नहीं है।

'शक्य संबन्धो लक्षणा" जहां शक्य अर्थ संभव नहीं वहां लक्षणावृत्ति जन्य लक्ष्य अर्थ का बोध होता है। शास्त्रों में शक्ति एवं लक्षणा के बहुत से भेद कहे गये हैं किन्तु यहां केवल सामान्य विचार किया है। जिस प्रकार शक्ति के योग, रूढ, योगरूढ तीन भेद हैं इसी प्रकार लक्षणा के भी केवललक्षणा, लक्षित लक्षणा, गौणी इच्छित आदि हैं। शक्य से जहां परंपरा संबन्ध होता है उसको लक्षित लक्षणा कहते हैं जैसे (द्विरेफो रौति) दो रेफ ध्वनि करते हैं।

यह केवल लक्षणा भी जहत् लक्षणा और अजहत् लक्षणा और जहदजहत् लक्षणा भेद से तीन प्रकार की है।

महावाक्यों से ब्रह्म का बोध भागत्याग लक्षणा से होता है। अतः भागत्याग लक्षणा का उपयोग ब्रह्मज्ञान में होता है।

शब्द प्रमाण- शब्द जन्य बोध में आकांक्षा ज्ञान योग्यता ज्ञान आसत्ति, तात्पर्य ज्ञान ये चारों सहायक हैं। लौकिक शब्द का तात्पर्य प्रकरण से जाना जाता है किन्तु वेद शिरोभाग जो उपनिषद् हैं इनका तात्पर्य अहेयं अनुपादेय अद्वितीय ब्रह्म में है। उपक्रम उपसंहार आदि वैदिक वाक्यों के तात्पर्य बोध में छ हेतु हैं। १-उपक्रम उपसंहार की एकता २-अभ्यास, ३-अपूर्वता, ४-फल, ५-अर्थवाद ६-उपपत्ति ये वैदिक वाक्यों के तात्पर्य में ६ लिंग हैं। वैदिक वाक्यों का ज्ञान इन्हीं से होता है।

१—उपनिषद् रूप वेद में उपक्रम और उपसंहार केवल अद्वितीय ब्रह्म में है। जैसे—

छान्दोग्य उपनिषद् के छठे अध्याय के उपक्रम (प्रारंभ) में अद्वितीय ब्रह्म है और सातवें अध्याय के उपसंहार में भी अद्वितीय ब्रह्म है जो अर्थ प्रारंभ में वही अन्त में है।

२—पुनः पुनः कथन का नाम अभ्यास है। जैसे छठे अध्याय में नौ बार "तत्वमसि" महावाक्य है। यही अद्वय ब्रह्म में अभ्यास है।

३—प्रमाणान्तर से अज्ञात को अपूर्व कहते हैं। ब्रह्म उपनिषद् प्रमाण से भिन्न किसी अन्य प्रमाण का विषय नहीं है अतः उसकी अद्वय ब्रह्म में अज्ञातता रूप अपूर्वता है।

४—अद्वितीय ब्रह्म के ज्ञान से [illegible]

"फल" है।

४—प्रशंसा बोधक वाक्य को अर्थवाद कहते हैं।

६—कथन किए हुए अर्थ के अनुकूल युक्ति को उपपत्ति कहते हैं। जैसे छान्दोग्य उपनिषद में ब्रह्म को सब का कारण बतलाया गया है और कार्य कारण में अभेद सिद्ध करने के लिए अनेक उदाहरण हैं। इस प्रकार ६ लिंगों से सारी उपनिषदों का केवल अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य है यही सिद्धान्त निश्चित होता है। यहां शब्द प्रमा का करण शब्द प्रमाण का विचार पूरा होता है।

५—अर्थापत्ति प्रमा के करण को अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। उपपादक की कल्पना का हेतु उपपाद्य का ज्ञान अर्थापत्ति है। उपपादक का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमा है। अर्थापत्ति प्रमा के दो भेद हैं-दृष्ट और श्रुत। दिन में भोजन न करने वाले मोटे पुरुष की स्थूलता रात्रि भोजन की कल्पना कराती है। यही दृष्टापत्ति है क्योंकि यहां उपपाद्य स्थूलता दृष्ट है। श्रौत उपपाद्य की अनुपपत्ति ज्ञान से उपपादक की कल्पना श्रुतार्थापत्ति है। श्रौत अर्थापत्ति का जिज्ञासु के अनुकूल उदाहरण यह है—"तरति शोकमात्मवित्" आत्मज्ञानी शोक को तरता है इस श्रुति में आत्मज्ञान से शोकनिवृत्ति श्रुत है अतः यह शोक रूपी बन्धन मिथ्यात्व की कल्पना कराती है। यही उपपादक है ज्ञान से शोक निवृत्ति उपपाद्य है। यह जिज्ञासु को श्रौत है अतः श्रौतार्थापत्ति है ज्ञानी पुरुषों को दृष्ट है। यहां उपपाद्य का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण और उपपादक का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमा है

६—अभाव प्रमा के असाधारण कारण को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं। निषेधमुख प्रतीति का विषय अभाव है। अथवा प्रतियोगी सापेक्ष प्रतीति के विषय को अभाव कहते हैं। अभाव दो प्रकार का होता है- संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। अन्योन्याभाव एक प्रकार का है और संसर्गाभाव चार प्रकार का है- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, सामयिकाभाव, अत्यन्ताभाव। यहां अभाव ज्ञान प्रमा है। उसके ज्ञान में असाधारण कारण प्रतियोगी का अनुपलंभ करण है वही प्रमाण है। जिज्ञासु के अनुकूल अनुपलब्धि प्रमाण की उपयोगिता इस प्रकार है- "नेह नानास्ति" यह श्रुति इस जगत्प्रपंच का त्रैकालिक अभाव बतलाती है। वह निषेध स्वरूप से नहीं किन्तु परमार्थरूप से ब्रह्म में प्रपंच का निषेध करती है। इस प्रकार यहां प्रपंचाभाव का ज्ञान अनुपलब्धि है। इसी प्रकार के और भी अभावों के ज्ञान का हेतु अनुपलब्धि प्रमाण है। यह संक्षेप से प्रमाणों पर विचार किया गया है।

इस प्रमा ज्ञान से विपरीत ज्ञान को अप्रमा कहते हैं। इसी को मिथ्याज्ञान और संशय तथा अयथार्थ कहते हैं। इनके जो अनेक भेद हैं इनका यहां विचार नहीं किया जायगा।

यहां ६ प्रकार के जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाण बतलाये गये हैं उन सब में शब्दप्रमाण ही मुख्य है। अन्य प्रमाण इसी के अनुगामी हैं। जैसे बलवान् सिंह ही हाथी के मारने में समर्थ होता है और कोई पशु समर्थ नहीं होते। तो भी उसके द्वारा मारे हुए हाथी को बाद में

शृगाल आदि जन्तु उसको खाने के लिए उद्यत होते हैं उसी प्र
शब्द रूपी (वेद) केसरी पहले जिस वस्तु को सिद्ध करता है अन्
प्रमाण उसी के सिद्ध करने में सक्षम होते हैं अतः वे भी प्रमाण मा
जाते हैं।

यह प्रमाण का निरूपण यहाँ इसलिए किया गया है कि आजक
के कई नए विचारक ईंट रोड़े को देख कर ही प्रमाण मानते हैं।
उनकी मान्यता का आधार केवल एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही होता है। ऐसे
विद्वानों को समझ लेना चाहिए कि केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से ही प्रत्ये
सत्य पदार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती। जिस प्रमाण से जिस वस्तु की
सिद्धि होती है उसको उसी प्रमाण की आवश्यकता रहती है। केवल
प्रत्यक्ष को प्रमाण मानना नास्तिक चार्वाकों का सिद्धान्त है। क्योंकि
वे ईश्वर एवं पुनर्जन्म पर भी विश्वास नहीं करते हैं। "खाओ पिओ
मौज करो" यही उनका ध्येय होता है। ऐसे नास्तिकों का भारत के
सभ्य समाज में कहीं भी स्थान नहीं रहा है। आस्तिक जनों को
चाहिये कि इस प्रकार के नास्तिकों की प्रमाण-शून्य बातों से प्रभावित
न होकर अपने मान्य शब्द प्रमाण वेद शास्त्रों का अध्ययन करें और
उसके द्वारा बतलाए हुए सन्मार्ग का अनुकरण करते हुए अपने श्रेष्ठ
जीवन की पवित्रता पर ध्यान रक्खें।

आर्यों का मूल निवास स्थान भारत ही है

आर्य कहीं बाहर से भारत में नहीं आये थे। आर्य बाहर से भारत में आये थे यह मत पाश्चात्यों का है। उनके मतानुसारी महा पंडित राहुल ने भी अपना विचार उसी प्रकार व्यक्त किया है। अन्य भी कतिपय भारतीय विद्वान पाश्चात्य शिक्षादीक्षा से प्रभावित होकर आर्यों को भारत में बाहर से आया हुआ साबित करने का प्रयास करते रहते हैं किन्तु यह उनका विचार सर्वथा भारतीयों के विचार से अप्रमाणित है।

हम आर्य यदि अन्य किसी देश से आये होते तो वह देश हमारा सब से परम पवित्र तीर्थ होता। हम उसको कभी भूल नहीं सकते थे। हमारे प्राचीन साहित्य में उसकी अवश्य ही कहीं चर्चा होती परन्तु वैसी चर्चा नहीं है। हमारे सर्वप्राचीन कवि वाल्मीकि ने राम को आर्य लिखा है "स वै आर्य इति स्मृतः" इससे स्पष्ट विदित होता है कि आर्य जाति मूल से ही भारतीय है।

हमारे देश का आर्यावर्त नाम मनु आदि स्मृति ग्रन्थों में लिखा हुआ है। हम अपने परंपरागत वैदिक संकल्प में भी 'आर्यावर्तैक देशे" पढ़कर प्रत्येक शुभ कर्म सन्ध्यावन्दन आदि के समय अपने मूल देश का स्मरण करते हैं। हमारे समस्त तीर्थ स्थल इसी भारतवर्ष में विद्यमान हैं। जिनका नाम तथा विस्तृत वर्णन पुराणों के अतिरिक्त हमारे मूल ग्रन्थ वेद एवं उपनिषदों में पाया जाता है। भारत की सात नदियों

का नाम 'सप्त सिन्धवः' वेद में आता है। 'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमम्' इस वेद मंत्र में गंगा यमुना सरस्वती सतलज नदियों का नाम है। इसी प्रकार देशों के नाम भी हैं। अतः वेद अनादि हैं आर्य अनादि हैं भारत आर्य देश ऋषियों का देश भी अनादि है। हमें हमारे वेद सदा ही हमको हमारे देश का स्मरण कराते रहते हैं अतः इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि आर्य भारत के ही मूल निवासी हैं।

भारत में आर्य बाहर से आए थे इस भ्रान्त धारणा को फैलाने में पाश्चात्यों की एक कुटिल चाल थी। वे चाहते थे कि हमारा साम्राज्य भारत में स्थिर रहे। आर्य अपने को बाहर का समझने लगें बल्कि उनका इस देश के प्रति मातृभूमि का संबन्ध और इसके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा नष्ट हो जाय। कभी स्वराज्य की चर्चा ही न उठे। इस चाल को हमारे देश के योग्य विद्वान अच्छी तरह समझते हैं। खेद यह है कि इस कुचक्र को न समझने वाले भी अपने को महा पंडित कहे जाने पर महान् गर्व का अनुभव करते हैं।

भारत के माननीय डाक्टर श्री संपूर्णानन्द जैसे प्रामाणिक विद्वान ने भी स्पष्ट कहा है—'हम आए थे नहीं कहीं से" अतः उक्त समस्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आर्यों का मूल निवास स्थान भारतवर्ष है।

सृष्टि क्रम से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय आर्यों के विचार अक्षय्य एक रूप में चले आरहे हैं। विदेशियों के आगमन से और

उन्नति के अनुकूल चेष्टायें ही उसकी भूषणभूत सम्यक् चेष्टायें हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य के लौकिक पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार विचार का नाम ही संस्कृति है। आर्यों का प्राचीन रहन सहन आचार व्यवहार धर्मकर्म, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था, शास्त्रीय सिद्धान्त, शिक्षा प्रणाली जिसके प्रधान प्रधान अवलम्बन हों वही आर्य संस्कृति या भारतीय संस्कृति कही जा सकती है। हिन्दु जाति का ही दूसरा नाम आर्य जाति या श्रेष्ट जाति है। इसका चाल चलन रहन सहन आहार व्यवहार जो स्वाभाविक कल्याणमय आचरण है उसका नाम हिन्दू संस्कृति है।

इसमें सन्देह नहीं कि भारत में कई विदेशी जातियाँ आईं और बस गईं। भारतीयों के आचार विचार रहन सहन आदि पर उनका कुछ प्रभाव भी पड़ा, पर उससे यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय संस्कृति का आधार ही बदल गया। भारत हिन्दुओं का देश है अतः इन्हीं की संस्कृति भारतीय संस्कृति है। जिसके मूलस्रोत वेदादि शास्त्र हैं। धन गय लौकिक पारलौकिक आर्थिक राजनैतिक सामाजिक दर्शन, भाषा, साहित्य ज्ञान, विज्ञान, इतिहास, कला आदि के संस्कृति के सभी अंगों पर वेदादि शास्त्र मूलक सिद्धान्तों की ही छाप है। बाहरी प्रभाव से पृथक् दीख पड़ता है। इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है। संसार की प्रायः सभी देशों की प्राचीन संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति की कितनी ही बातें विकृत रूप में पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ [illegible] किसी रूप में वर्ण-व्यवस्था सभी जगह मिलती है। विभिन्न

देशों के प्राचीन ग्रन्थों में यज्ञ आदि की चर्चा आती है। दर्शन शास्त्र तो सर्वत्र फैला हुआ है ही। इन सब बातों का वहाँ प्रचार कैसे हुआ, यह प्रश्न एक अलग है। परन्तु एतावता यह सिद्ध हो जाता है कि हमारी भारतीय संस्कृति प्राचीन एवं अत्यन्त व्यापक है।

संस्कृति शब्द का प्रचार तो आजकल बहुत है परन्तु सच्चे अर्थ में बहुत कम प्रयोग होता है। साधारण मनुष्य इसका प्रयोग सभ्यता के अर्थ में करते हैं। सभ्यता और संस्कृति साथ साथ कहने पर भी बहुधा यह शब्द विन्यास आलङ्कारिक मात्र है। सभ्यता और संस्कृति सर्वथा असम्बद्ध न होते हुये भी एक दूसरे से भिन्न हैं। संस्कृति आभ्यन्तर आचार विचार एवं सभ्यता बाह्य वेष भूषा तत्व है। संस्कृति को अपनाने में विलम्ब हो सकता है, पर सभ्यता की नकल सद्यः की जा सकती है। भारतीयों के टाई हैट पाजामे आदि से यह स्पष्ट है। यूरोप के देशवासी भले ही धोती कुर्ता पहन लें। आसन पर बैठकर दाल रोटी खाने लगें और झोंपड़ी में रहने लगें किन्तु उनके विचार भारतीय नहीं हो सकते उन पर भारतीय रंग नहीं चढ़ सकता। संस्कृति का संबन्ध निश्चय ही धार्मिक विश्वासों से है। उसके बिना केवल बाह्य आडंबर व्यर्थ है। आजकल के कुछ विद्वानों का मत है कि कई संस्कृतियों विशेषतया हिन्दू मुस्लिम संस्कृति का मिश्रित रूप ही भारतीय संस्कृति है किन्तु इसे भारतीय संस्कृति कदापि नहीं कहा जा सकता। क्योंकि न कोई इसका आधार ही है, न कोई इसका स्पष्ट रूप ही प्रतीत होता है। प्रायः देखने में यह आता

है कि जहाँ जहाँ भारतीय संस्कृति के किसी अङ्ग पर विदेशी प्रभाव पड़ा वहीं उसमें निश्चयतया निकृष्टता आगई। दर्शन कला साहित्य आदि सभी में यह दिखलाया जा सकता है। भारत के स्वतन्त्र होते ही हमारे इस देश को नेताओं ने धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित करके यह आश्वासन भी दिया है कि सबकी संस्कृति की रक्षा की जाएगी किसी की संस्कृति पर हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।

आधुनिक लोगों की भाषा में संस्कृति सभ्यता आदि शब्द बहुत प्रयुक्त होते हैं। वास्तव में इन शब्दों का यह नवीन प्रयोग धर्म ज्ञान आदि प्राचीन शब्दों के स्थान पर होता है. परन्तु यह उचित नहीं है। यदि भारतीय साहित्य से अनभिज्ञ आज के नवशिक्षित लोग शब्दों का ठीक अर्थ जानते होते तो इन शब्दों का ऐसा भयङ्कर दुरुपयोग कदापि नहीं करते। वर्तमान पाश्चात्यों या उनके अनुयायियों से पूछा जाय कि संस्कृति क्या वस्तु है ? तो वे प्रश्न के अर्थ पर विचार न कर पश्चिमी सभ्यता की प्रशंसा करने लगते हैं। परन्तु यदि पुराने ढंग के पण्डितों के सामने रक्खा जाय तो निःसन्देह संस्कृति शब्द का उचित अर्थ बतलाने लगेंगे। संस्कृति का हर एक अवयव अलग करते हुये संस्कृति वास्तव में क्या वस्तु है इस पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रश्न के उत्तर से स्पष्ट हो जायगा कि भारतीय और पश्चिमी विद्वानों की दृष्टि में कितना अन्तर है। प्राचीन ऋषि-महर्षियों के द्वारा रचित तात्विक दर्शन भारतीय संस्कृति के अनुपम रत्न हैं वर्तमान पाश्चात्य [illegible] को न्याय या वैशेषिक दर्शनों का ही अपूर्ण अंश कहा जा सकता

अपूर्ण इसलिए कि उसमें केवल भौतिक तत्वों तक ही दृष्टि सिमित जबकि भारतीय दृष्टि में आध्यात्मिक तत्व भी प्रधान रूप से प्रतिष्ठित किये गये हैं। इन दोनों दर्शनों का ध्यान रखते हुए भी भारतीय न्य दर्शन योग वेदान्त सांख्य आदि के साधनों से उनकी त्रुटियां दूर देते हैं। अतः संस्कृति सभ्यता शब्दों का प्रयोग विचार पूर्वक ही त्येक सभ्य एवं शिक्षित पुरुष के लिये अनिवार्य ही नहीं अपितु परम व्य होना चाहिये किसी भाषा के ज्ञान के बिना गंभीर लेखों में था व्याख्यानों में उसके शब्दों का अपार्थक प्रयोग लज्जास्पद है।

आज भारत नितान्त स्वतन्त्र होते हुए भी अपनी संस्कृति अपनाने विषय में बिलकुल उदासीन है। जब तक यह उदासीनता दूर न होगी तक भारत अपने सत्य सनातन स्वरूप को प्राप्त न हो सकेगा। ता है शनैः शनैः नेताओं और भारतीय विद्वानों की समझ में यह आजायगी और इस गल्ती को सुधारने का पूर्ण प्रयत्न होगा। की संस्कृति के समृद्ध होने पर ही देश पूर्ण समृद्ध बन सकता है में कोई सन्देह नहीं।

मान्य मालवीय जी का यह सिद्धान्त है कि जिस देश की संस्कृति रकिया आगई है वह कभी समुन्नत नहीं हो सकता। अंग्रेजों ने कुशासन काल में इस हमारी संस्कृति को नष्ट भ्रष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये किन्तु ईश्वर की कृपा से उनका प्रयत्न सफल हो सका। और भारतीय तपस्वी महात्माओं की असीम कृपा से यह हमारी संस्कृति विदेशियों के कुचक्रों से बचकर आज भी

अप्रमाण है और बनी रहेगी। इसका कारण हमारा संस्कृत साहि
और उसके प्रति गहरी जनता का परम विश्वास है। परन्तु प
विद्वानों के वचनों से संभव है इस विषय में धार्मिक जनता के ह
में पीड़ा हुई हो और इस कारण से उनके वचनों की अवहेलना
हो रही है परन्तु यदि उन जैसे महापंडित अपने पूर्वजों की भा
तीय संस्कृति की उत्तमता की ओर विचार करते तो वे अवश्य नतमस्त
होते और उसकी उपासना से पृथक् न बन जाते। अब भी उनसे
नम्र निवेदन है कि वेदादि शास्त्रों का सही अर्थ समझकर इस विष
में पुनः अपना विचार उन्हें स्थिर कर लेना चाहिए। इससे वे आर्य
जाति एवं भारतीय संस्कृति की अधिक सेवा कर सकेंगे।

आर्य जाति एवं उसके भेद

"चत्वार एकस्य पितुस्तु पुत्राः" ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र एक ही
परमेश्वर के पुत्र हैं। इनके गोत्रों का देखा जाय तो चारों वर्णों के गोत्र
कश्यपादि-महर्षि ही हैं। गोत्र सन्तान परम्परा से माना जाता है।
गुरु के गोत्र से भी गोत्र माना गया है। जैसे इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय
कुमार कपिल वस्तु नगर के संस्थापक महर्षि गौतम कपिल के पास
जाकर उनका गोत्र ग्रहण किये और गौतम वंशीय कहे जाने लगे।
इन्हीं के वंश में शुद्धोदन थे। यह "सुन्दरानन्दम्', में अश्वघोष ने
लिखा है। वेदों और पुराणों के देखने से प्रमाणित होता है कि समस्त
आर्यों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि, आंगिरा, वशिष्ठ आदि से

हुई है। और उनके गुण कर्मानुसार सृष्टि के आदि में ही चार भेद किये गये और सबके लिये कर्म नियत कर दिये गये ताकि राष्ट्र की उन्नति में अन्तर्संघर्ष न हो। "संस्कृतं वृत्तमिष्यते" इस महाभारत के अनुसार जिस जाति में जो उत्पन्न हुआ हो और उसके पूर्वजों का जिस जाति के अनुसार संस्कार किया जाता रहा हो वह उस जाति का है यह निर्विवाद है कि जन्म से ही जाति मानी गई है न कि केवल कर्म से।

महाभारत में लिखा है कि मनुष्यत्व में समस्त जाति का सांकर्य होने से जाति की परीक्षा कैसे हो। वहाँ इस प्रश्न के उत्तर में निर्णय किया गया है कि जिस वर्ण के संस्कार विधि से संस्कृत जिस वंश में जो उत्पन्न हुआ हो, और उसमें अपनी जाति का गुण भी हो वही उसकी मुख्य जाति है।

आर्यों ने अपने चार जाति विभागों में सदा से ही समन्वय रक्खा है। कभी संघर्ष नहीं हुआ है।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्यपद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ॥ श्रुति

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत् ॥

इस मनुवचन एवं वेद मन्त्रानुसार एक ही आर्यत्व शरीर के चारों वर्ण अंग हैं और सब मिलकर एक ही निःश्रेयस लक्ष्य सिद्धि में सदा

से रत रहे हैं। आर्य जाति का लक्ष्य केवल ऐहलौकिक उन्नति ही न रही है अपितु पारलौकिक लक्ष्य ही उसका मुख्य ध्येय रहा है। श्री विश्व के अन्य मानव समाज में यह विशेषता नहीं रही है। इसलि तो देव भी भारतवर्ष में मानव शरीर पाने के लिये लालायित रहते जैसा कि विष्णु पुराण में लिखा है।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे
स्वर्गापवर्गस्य च हेतु भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।

राजनैतिक दृष्टि से भारत में सूर्यवंशज और चन्द्रवंशज विद्व राजर्षियों का शासन रहा है। हमारे पुराण आदि ग्रन्थों में उनके त्याग एवं उपकार तथा वीरता के कार्य अच्छी तरह लिखे गये हैं।

सूर्यवंश—

नारायण से ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप से विवस्वान्, विवस्वान् से मनु, मनु से इक्ष्वाकु। इस प्रकार से इनकी उत्पत्ति कही गई है।

"तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां, राजानं विद्धि पूर्वकम्।"

इस वाल्मीकीय रामायण के वचनानुसार सूर्य के पुत्र मनु ने अयोध्या में अपने पुत्र इक्ष्वाकु को प्रथम राजा नियुक्त किया था। इसी कुल में मान्धाता, सगर, भगीरथ हुये, जिसकी साकार कीर्ति भगवती भागीरथी आज भी असंख्य मानवों का उद्धार कर रही है। इसी वंश

में महाराजा दिलीप हुये हैं। जिन्होंने एक गाय के लिए अपना शरीर प्रदान कर दिया था और प्रसन्न कामधेनु के आशीर्वाद से रघु नाम का पुत्र हुआ था। राजा रघु ने समस्त भूमण्डल पर दिग्विजय किया था। इनके पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुये। जिसके पुत्र के रूप में स्वयं क्षीरसागरशायी भगवान विष्णु रामचन्द्र के रूप में अवतीर्ण हुये। जिसका चरित्र आदि कवि ने रामायण में लिखा है।

इसी वंश में प्रसिद्ध राजा ऋतुपर्ण हुये हैं जिसके दरबार में महाराज नल ने अज्ञातवास किया था। इस रघुवंश अथवा सूर्यवंश में में जितने राजर्षि हुये हैं सब महान हुए हैं। इस विषय में महाकवि कालीदास ने महाकाव्य रघुवंश के उपक्रम में लिखा है।

सोऽहमाजन्म शुद्धानामाफलोदय कर्मणाम्। आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥ शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्। वार्द्धके मुनिवृत्तानां, योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥ त्यागाय संभृतार्थानां, प्रजायै गृहमेधिनाम्। इत्यादि।

कविकुलगुरु कालिदास कहते हैं कि मैं जिन रघुवंशज क्षत्रियों का वर्णन कर रहा हूं वे जन्म से ही शुद्ध थे। वे इतने कर्मनिष्ठ थे कि प्रत्येक कार्य को सफल करके ही छोड़ते थे। उनका साम्राज्य चारों समुद्रों तक था। उनके विमान एवं रथ स्वर्ग तक अपना रास्ता बना चुके थे। वे बचपन में विद्याभ्यास करते थे एवं यौवन में सुख तथा वृद्धावस्था में मुनि बनकर योगाभ्यास करके शरीर त्याग करते थे। वे

प्रजा से धन कर। केवल जनता की भलाई के लिए ग्रहण करते थे और विवाह केवल सन्तान के लिए करते थे न कि विषयभोग के लिए।

इस प्रकार के राजर्षियों के शासन से भारतवर्ष को ही महान गौरव प्राप्त हुआ था। आज भी इसी रघुकुल के वंशज महाराजाओं से उदयपुर और जयपुर की भूमि सुशोभित है। एकमात्र सर्वशक्तिमान नेपाल राज्य के महाराज भी इसी सूर्यवंश की पवित्र विभूति हैं।

उक्त सूर्य वंश की तरह चन्द्रवंशी राजा भी भारतवर्ष पर शासन करते आये हैं उनकी उत्पत्ति क्रमशः इस प्रकार हुई। ब्रह्मा के पुत्र महर्षि अत्रि, अत्रि के चन्द्र चन्द्र के बुध, बुध का पुत्र पुरूरवा। महाराजा पुरूरवा की राजधानी प्रयाग में थी। आज उनके बनाये हुये किले का भग्नावशेष झूंसी में गंगातट पर विद्यमान है। इसी वंश में महाराजा नहुष हुये थे। जिनको इन्द्रपद पर भी कुछ समय के लिये नियुक्त किया गया था। नहुष के पुत्र ययाति, ययाति के पुत्रों में यदु और पुरु दो वंशधर हुये हैं। पुरुवंश में महाराजा कुरु हुये हैं। इनके ही वंश परम्परा में महाराजा दुष्यन्त और भरत हुये थे। इसी वंश में महाराज शन्तनु और शन्तनु से भीष्मपितामह जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ वीर हुये हैं। जिन्होंने छ मास तक मृत्यु को भी अपने पास नहीं आने दिया था। शन्तनु के पौत्र पाण्डु और धृतराष्ट्र थे। पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिरादि पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादि हुये। इनके ही समय में विख्यात महाभारत युद्ध हुआ। जिसमें १८ अक्षौहिणी सेनाओं के [illegible] से भारतवर्ष की वीरता कुरुक्षेत्र के प्रांगण की धूल में मिल गई

और विदेशी म्लेच्छों को भारत में आने के लिये द्वार खुल गया। इस वंश के अंतिम राजाओं में उल्लेख करने योग्य अभिमन्यु के पुत्र महाराज परिक्षित् एवं उनके पुत्र जन्मेजय हुये। इन्होंने पिता का बदला लेने के लिये सर्पमेध यज्ञ आरम्भ किया था किन्तु आस्तीक ऋषि के कहने से रुक गये। आज भी तँवर वंश के क्षत्रिय इसी चन्द्रवंश की सन्तान हैं। इस चन्द्र वंश का वर्णन व्यास जी ने लक्षश्लोकों में महाभारत में किया है। और भी भागवत आदि पुराण इनकी महिमा से ओत प्रोत हैं। इनको पढ़ने से समस्त भारत का अतीत ऐतिहासिक दृश्य प्रत्यक्ष सा होने लगता है।

राजा ययाति के पुत्र यदु के वंशजों की राजधानी शूरसेन अथवा मथुरा रही है। इसी कुल में उत्पन्न वसुदेव के पुत्र वासुदेव भगवान् कृष्ण हुए हैं जिनको भगवान् विष्णु का षोडशकलायुक्त पूर्ण अवतार कहा गया है। भगवान् कृष्ण ने असंख्य आततायियों का वध कराकर धेनुरूपधारिणी धरा के असह्य भार को उतार दिया था जिसकी कथा श्रीमद्भागवत में विस्तार से लिखित है। समस्त वेदों एवं उपनिषदों की सारभूत भगवद्गीता इन्हीं भगवान् कृष्ण के मुखारविन्द से आर्य जाति को प्राप्त हुई है जिसके पाठ से वह आत्मबल प्राप्त होता है कि जो मनुष्य को अभय बना देता है। इसी गीता के पाठ से लोकमान्य श्री बालगंगाधर तिलक ने सर्व प्रथम स्वराज्य का नारा बुलन्द किया था कि—

'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"

महात्मा गान्धी ने इसी गीता से ही प्रेरित होकर अजेय अंग्रेजी साम्राज्य को बिना शस्त्र के पराजित कर दिया कृष्ण भगवान ने द्वारका पुरी बसायी थी। इस वंश की विस्तृत कथा २४ हजार श्लोकों में हरिवंश पुराण में लिखी हुई है। इस प्रकार चन्द्रवंश के महाराजाओं ने भारतवर्ष में वेदों एवं सनातन धर्म की रक्षा करते हुए अपने पवित्र शासन से भारतभूमि को अलंकृत किया है। भाटी राजपूत इसी वंश के हैं। अतीत में इनका राज्य बहुत विस्तृत था। टाड ने लिखा है कि ढाई हजार वर्ष से पूर्व भारत के धाता विधाता भाटी राजपूत ही थे। आज भी महाराज जैसलमेर इसी भाटीवंशमालिका के सुमेरु हैं। और कच्छभुज और जामनगर तथा करोली भी इन्हीं में है।

आज के अधिकांश लेखकों को चाहे यूरोप के विषय में कण कण का भले ही ज्ञान हो और वहां के आचार विचार के चित्रण करने में लोकोत्तर चातुर्य भी हो किन्तु भारतीय प्राचीन विचारों से वे अत्यन्त दूर हैं। उनकी दृष्टि कभी अपने इतिहास को देखने में असमर्थ है। उनके हृदय पारचात्य रंग से इतने रंग चुके हैं कि वे भारतवर्ष की तरफ देखने की कोशिश भी करते हैं तो पारचात्य दृष्टिकोण से ही उसको देखते हैं और उन्हीं की जीभ में अपनी जीभ मिलाकर आर्यों भी गोमांस भक्षक कहने लग जाते हैं। किन्तु अपना इतिहास, धर्म और अपनी संस्कृति को जानने वाले भारतीय विद्वान इन बातों को कोई महत्व नहीं देते हैं।

ब्रह्मर्षिवंश

ज्ञान विज्ञान से विश्व को आलोकित करने वाले आर्षदृष्टि युक्त इन विख्यात महर्षियों से अतीत में यह भारतवर्ष अलंकृत रहा है, उनकी देन असंख्यात शास्त्रीय निधि आज भी प्राप्त है उनका इस लेख में उल्लेख करना मैं अपना कर्तव्य समझकर उनके विषय में थोड़ा से कुछ लिख रहा हूँ।

ब्राह्मणों के पंचगौड़ और पंचद्राविड नाम से आज भी दशभेद पाये जाते हैं। देश भेद से भले ही इनके नाम भिन्न भिन्न हों किन्तु सब ब्रह्मा के मानस दस पुत्रों की ही सन्तान हैं।

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड मैथिल उत्कलाः।
ब्राह्मणाः खलु पञ्चैते विन्ध्योत्तर निवासिनः॥१॥

इस श्लोक में उक्त पांच आस्पदों के ब्राह्मण अधिकतर विन्ध्य के उत्तर में प्रधान रूप से निवास करते हैं।

कर्णाटका महाराष्ट्रास्तैलङ्गा गुर्जरास्तथा।
द्राविडाश्चेति पंचैते द्राविडा विन्ध्य दक्षिणे॥२॥

इन पांच ब्राह्मणों की प्रधानता विन्ध्य के दक्षिण में रही है ब्रह्मा मानस पुत्र दस ऋषियों के नाम ये हैं—

मरीचिरत्रिरंगिरसः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
प्रचेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च॥३॥

१ मरीचि २ अत्रि ३ अंगिरा ४ पुलस्त्य ५ पुलह ६ क्रतु ७ प्रचेता ८ वसिष्ठ ९ भृगु १० नारद। ये ब्रह्मा के दश मानस पुत्र कहे जाते हैं इनको वेदाभ्यास होने के कारण वेदर्षि भी कहते हैं। क्योंकि वेद में मरीचि के पुत्र कश्यप की सन्तान है। ये दश प्रजापति ब्रह्मा के समान तेजस्वी द्वितीय ब्रह्म माने जाते हैं। कल्प पर्यन्त इनकी आयु भी ब्रह्मा की जितनी होती है इन ऋषियों के हृदय में स्वतः वेद की ऋचाएं मान हुई थी अतः इनको मन्त्रद्रष्टा कहते है। द्रष्टा का अर्थ है दर्शन करने वाला। अतः वेद के स्रष्टा इनको जो लोग मानते हैं वे भ्रम में हैं। 'ऋषयोमन्त्रद्रष्टारः" इस प्रकार ऋषि शब्द का अर्थ ही है वेद के मन्त्रों को दिव्य दृष्टि से स्वतः देखने वाला।

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का नाम प्रत्येक मन्त्र के देवता एवं छन्द के साथ विनियोग के समय स्मरण किया जाता आरहा है।

१ अत्रि २ वसिष्ठ ३ कौत्स ४ अंगिरा ५ दध्यङ्ङाथर्वण ६ विश्वामित्र ७ भरद्वाज ८ हिरण्यस्तूप ९ प्रस्कण्व १० प्रजापति ११ गोतम १२ वामदेव १३ नारायण आदि ऋषि वेद कर्ता नहीं है प्रत्युत स्मर्ता हैं क्योंकि वेद नित्य है। दिव्य आर्ष दृष्टि से ऋषियों को स्वतः वेद मन्त्रों का भान हो जाता था किन्तु साधारण को केवल गुरु से ही वेद का ज्ञान होता था।

वैदिक वंशब्राह्मण में विस्तार से ऋषियों के वंश का वर्णन है [illegible] चरित्र चित्रण के साथ वर्णन अधिक स्पष्ट है। [illegible] में राजशासन क्रम से राजर्षियों का वर्णन मिलता है किन्तु

विद्योन्नति एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ब्राह्मणों का साम्राज्य अत्यय वेदादि विज्ञान है। यहां क्रम से इनका परिचय दिया जा रहा है।

ऋषियों का समय आधुनिक राहुल जैसे विद्वान खींचकर दो तीन हजार वर्ष के भीतर ही लाते हैं अतः इस विषय में भ्रम निवारणार्थ इन कतिपय ऋषियों का वंशक्रम लिख रहा हूं जो कि ब्रह्मा के अत्यन्त सन्निकट हैं। आशा है इससे ऋषियों को आधुनिक सिद्ध करने वालों का भ्रम दूर हो जायगा।

ऋषि एवं उनका समय

१. कश्यप- ब्रह्मा के मरीचि मरीचि के कश्यप।

२. शाण्डिल्य- शांडिल्य कश्यप के ही पुत्र अग्नि कुण्ड से उत्पन्न हुये। अग्नि का गोत्र शांडिल्य है अतः उससे उत्पन्न ऋषि शांडिल्य कहे जाते हैं। शांडिल्य गोत्र के वंशज अति पवित्र माने जाते हैं।

३. भरद्वाज- ब्रह्मा, अंगिरा, बृहस्पति, भारद्वाज। ब्रह्मा से भरद्वाज का ४ पीढ़ी का अन्तर है। इसी वंश में धनुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान् द्रोणाचार्य हुये थे।

४. सांकृत्य- ब्रह्मा, भृगु, सांख्यायन, गमन, सांकृत्य।

५. गौतम- ब्रह्मा के पुत्र गौतम थे न्यायशास्त्र प्रवर्तक यही माने जाते हैं।

६. गर्ग- गर्ग संहिता के रचयिता महर्षि गर्ग यदुवंशियों के कुल गुरु थे। इनका वंश बहुत पवित्र माना जाता है।

७. वत्स- ये भी बहुत प्राचीन ऋषि हैं।

८. वशिष्ठ- ब्रह्मा के मानस पुत्रों में वशिष्ठ हैं। सूर्य वंश के आप कुल गुरु रहे हैं। अपने ब्रह्मदण्ड से इन्होंने विश्वामित्र के क्षत्रिय बल को परास्त कर दिया था।

९. कौशिक- महाराजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने अपनी घोर तपस्या के बल पर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। यह कुशिक ऋषि के सन्तान थे। इसलिये आपके वंशज कौशिक गोत्र से प्रसिद्ध हैं।

१०. पराशर- ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर। पराशर महर्षि ज्योतिष के परम विद्वान् थे। इनके पुत्र व्यास पौत्र शुकदेवजी हुये।

११. दधीचि- ब्रह्मा, अथर्वण, दध्यङ्। यही दधीचि नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी ही अस्थि से इन्द्र ने वज्र निर्माण कर वृत्रासुर का वध किया था। दाधीच ब्राह्मण इनकी संतान हैं।

१२. कपिल- ऋग्वेद के सूक्तों में कर्दम का नाम आता है। ब्रह्मा के पुत्र स्वयंभू मनु की कन्या देवहूती के साथ इनका विवाह हुआ था। उससे कपिल उत्पन्न हुये। यह नारायण के अवतार माने जाते हैं। सांख्य शास्त्र के आदि प्रवर्तक भी यही हैं।

राहुल सांकृत्यायन कपिल का समय ईसा से ५०० या ६०० वर्ष पूर्व लिखते हैं जो कि असंगत प्रतीत होता है क्योंकि कपिल की ही बहिन अनुसूया ब्रह्मा के पुत्र अत्रि के साथ ब्याही गई थी, जिससे दुर्वासा तथा चन्द्र उत्पन्न हुये थे। इसी कपिल महर्षि ने रामचन्द्र

ने २८ पीढ़ी पहले महाराज सगर के ६०००० पुत्रों को अपनी दृष्टि से भस्म कर दिया था। गंगासागर तीर्थ में इनका आश्रम था। भारतवर्ष में अन्य भी कई स्थान इनके नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसे काशी में कपिल धारा, नासिक में कपिलगंगा, बीकानेर में कपिलायतन (कोलायत) वस्तुतः कपिल अजर और अमर हैं। उनके विषय में आधुनिक समय निश्चित करना नितान्त धृष्टता ही कही जा सकती है। गीता में भी भगवान ने 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' ऐसा लिखा है जिससे कपिल की प्राचीनता सिद्ध होती है।

व्यास अथवा बादरायण—

राहुल व्यास का समय तृतीय शताब्दी मानते हैं किन्तु व्यास महाभारत युद्ध के पूर्व विद्यमान थे क्योंकि इनके ही आशीर्वाद से पाण्डव एवं कौरवों के पिता पाण्डु एवं महाराज धृतराष्ट्र की उत्पत्ति हुई थी। इनको बुद्ध के बाद में होने का प्रमाण यह दिया जाता है कि गीता में 'ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव" अध्याय १३ के ४२ में श्लोक में ब्रह्म सूत्र की चर्चा आई है। ब्रह्मसूत्र में बुद्धमत का खण्डन मिलता है। अतः यह सिद्ध होता है कि बादरायण व्यास बुद्ध के बाद उत्पन्न हुये थे।

इस विषय में सत्य यह है कि गीता में जिस ब्रह्मसूत्र की चर्चा आई है वह ब्रह्मसूत्र बादरायण रचित ब्रह्मसूत्र नहीं था। बादरायण रचित सूत्र को ब्रह्मसूत्र न कहकर वेदान्तमीमांसा कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र कोई प्राचीन ग्रन्थ रहा होगा, उसी का नाम गीता में आया है।

समानान होने के कारण वेदान्त सूत्रों को भी ब्रह्मसूत्र कहा जाता है। यह गीता के ब्रह्म सूत्र से नितान्त भिन्न है। महाभारत में पुराणों का उल्लेख आता है। अतः पुराणकर्ता वेदव्यास का समय त्रेता के अन्त में ही सिद्ध होता है क्योंकि १८ पुराणों के कर्ता वे ही माने जाते हैं। वेदों का विभाग करने के कारण इनको वेदव्यास भी कहते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि इतने विस्तृत पुराणों की रचना एक व्यास से संभव नहीं है। अतः अनेक व्यास हुये होंगे। इसका उत्तर यह है कि पुराण भी अति प्राचीन हैं। व्यास ने वेदों की तरह इनका भी व्यवस्थित विभाग किया है क्योंकि महाभारत वनपर्व में वायु पुराण का उल्लेख है इससे ज्ञात होता है कि पुराण किसी न किसी रूप में थे। यह कैसे संभव हो सकता है कि व्यास से पहले हमारा कोई इतिहास ग्रन्थ ही नहीं था। मार्कण्डेय अति प्राचीन दीर्घजीवी ऋषि हैं। वह स्वयं कहते हैं कि मैंने वायु पुराण का स्मरण करके भूत एवं भविष्य को बतलाया है। मार्कण्डेयको स्वयं हजारों युगों का अनुभव था किन्तु उनका वायु पुराण स्मरण करना पुराणों की अति प्राचीनता को सिद्ध करता है। वेदान्तसूत्र में योग मत का खण्डन किया गया है किन्तु व्यास ने अपने महाभारत (गीता) में योग की अत्यन्त प्रशंसा की है। यदि वही व्यास वेदान्त सूत्र कर्ता होते तो अपना ही खंडन क्यों करते। इससे सिद्ध होता है कि वेदान्त सूत्रकार से पुराणकार व्यास अत्यन्त प्राचीन हैं।

ब्रह्मसूत्र पद आया है वह उपनिषद्-मन्त्रों से तात्पर्य रखता, ...ा को तीसरी शताब्दी का मानना शास्त्रों के विषय में कहा जा सकता है।

इसी प्रकार कपिल के विषय में भी जो इनको ईसा से ४०० वर्ष का मानते हैं वह कर्दम के पुत्र कपिल से भिन्न ही कोई दूसरा पिल हो सकते हैं जिसको आसुरि कपिल माना जाता है। कपिल-सुरि-पञ्चशिख की परंपरा में यह कोई और कपिल हैं सांख्य से न्ध रखते हुए भी इनको कर्दम का पुत्र बतलाना संगत नहीं हो सकता।

जगदाहुरनीश्वरम् (गीता अध्याय १६) के अनुसार आज कल भी भ्रान्ति फैलायी जाने लगी है कि अनीश्वर वादी शब्द से यहां की चर्चा की गई है अतः गीता की रचना भी बुद्ध काल के बाद है। इसी प्रकार गीता के अहिंसा पद से भी बुद्ध की अहिंसा का र्थ लगाया जाने लगा है। अतः इस विषय पर यहां कुछ विचार आता है।

तत्समान होने के कारण वेदान्त सूत्रों को भी ब्रह्मसूत्र कहा जाता है। यह गीता के ब्रह्म सूत्र से नितान्त भिन्न है। महाभारत में पुराणों का उल्लेख आता है। अतः पुराणकर्ता वेदव्यास का समय त्रेता के अन्त में ही सिद्ध होता है क्योंकि १८ पुराणों के कर्ता वे ही माने जाते हैं। वेदों का विभाग करने के कारण इनको वेदव्यास भी कहते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि इतने विस्तृत पुराणों की रचना एक व्यास से संभव नहीं है। अतः अनेक व्यास हुये होंगे। इसका उत्तर यह है कि पुराण भी अति प्राचीन हैं। व्यास ने वेदों की तरह इनका भी व्यवस्थित विभाग किया है क्योंकि महाभारत वनपर्व में वायु पुराण का उल्लेख है इससे ज्ञात होता है कि पुराण किसी न किसी रूप में [illegible] यह कैसे संभव हो सकता है कि व्यास से पहले हमारा कोई इति[illegible] ग्रन्थ ही नहीं था। मार्कण्डेय अति प्राचीन दीर्घजीवी ऋषि हैं। [illegible] स्वयं कहते हैं कि मैंने वायु पुराण का स्मरण करके भूत एवं भविष्य [illegible] बतलाया है। मार्कण्डेय को स्वयं हजारों युगों का अनुभव था किन्तु उन[illegible] वायु पुराण स्मरण करना पुराणों की अति प्राचीनता को सिद्ध करता है [illegible] वेदान्तसूत्र में योग मत का खण्डन किया गया है किन्तु व्यास ने अपने [illegible] महाभारत (गीता) में योग की अत्यन्त प्रशंसा की है। यदि वही व्यास [illegible] वेदान्त सूत्र कर्ता होते तो अपना ही खंडन क्यों करते। इससे सिद्ध होता है कि वेदान्त सूत्रकार से पुराणकार व्यास अत्यन्त प्राचीन है। गीता में जो ब्रह्मसूत्र पद आया है वह उपनिषद्-मन्त्रों से तात्पर्य रखता

इसी प्रकार कपिल के विषय में भी जो उनको ईसा से ४०० वर्ष पूर्व का मानते हैं वह कर्दम के पुत्र कपिल से भिन्न ही कोई दूसरा कपिल हो सकते हैं जिसको आसुरि कपिल माना जाता है। कपिल-आसुरि-पञ्चशिख की परंपरा में यह कोई और कपिल हैं सांख्य से संबन्ध रखते हुए भी इनको कर्दम का पुत्र बतलाना संगत नहीं हो सकता।

'जगदाहुरनीश्वरम्' (गीता अध्याय १६) के अनुसार आज कल यह भी भ्रान्ति फैलायी जाने लगी है कि अनीश्वर वादी शब्द से यहां बौद्ध की चर्चा की गई है अतः गीता की रचना भी बुद्ध काल के बाद की है। इसी प्रकार गीता के अहिंसा पद से भी बुद्ध की अहिंसा का अर्थ लगाया जाने लगा है। अतः इस विषय पर यहां कुछ विचार किया जाता है।

गीता में अनीश्वर वाद की निन्दा का तात्पर्य जैन एवं बौद्धमत खंडन से नहीं है। सृष्टि काल से ही विश्व में दैवी एवं आसुरी संपत्ति विद्यमान है। आस्तिक दैवी संपत्ति रखते हैं और नास्तिक आसुरी अतः गीता में आसुरी संपत्ति रखने वाले हिरण्यकशिपु वेन आदि अनीश्वरवादियों की ही निन्दा की गई है न कि जैन एवं बौद्ध की।

अहिंसा एवं सब में समानता बुद्धमत में माने जाते हैं और गीता में भी उस पर जोर दिया गया है अतः यह कहना कि अहिंसा और समता गीता में बुद्धमत से ली गई हैं यह नितान्त असंभव है। भारत वर्ष में अहिंसाधर्म अनादि काल से प्रचलित है। [illegible]

व्यास अंगिरा आदि तथा राजर्षि भरत पुरूरवा आदि सब कल्प के आदि से ही इसी भारत भूमि में रहते आये हैं। इस देश में आर्य कहीं बाहर से नहीं आये हैं प्रत्युत इसी द्वीप से अन्य द्वीपों में भी शिक्षा गई है।

मनु ने लिखा है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इसका अर्थ है— इस भारत देश में उत्पन्न विद्वान् ब्राह्मणों से भूतल के सब मनुष्य शिक्षा ग्रहण करें।

जिस प्रकार आज कल यूरोप में शिक्षा ग्रहण करने वालों का विशेष नाम होता है उसी प्रकार भारत में शिक्षा ग्रहण करने वालों का विशेष आदर होता था।

यह एक विधि की विडम्बना ही है कि आज के भारतीय लेखक अपने लेख को प्रमाणित करने के लिए किसी यूरोपियन लेखक की शरण लेते हैं। उन पाश्चात्य लेखकों को ही प्रमाण मानकर अपने प्राचीन वेदों एवं ऋषियों को भी ईशा के आस पास ही रखना चाहते हैं। इसको ही दासता की मनोवृत्ति कहा जाता है। इस प्रकार के विद्वान अपने को प्रगतिशील कहते हैं और भारतीय विचार रखने वाले श्री सर राधाकृष्णन् जैसों के लिए धिकृतम शब्द का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः वेदादि संमत मत मानने वालों को धिक्कार देने वाले ..